आदर्श बालक

लेखक

श्री चतुरसेन शास्त्री

हिन्दी प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद

प्रकाशक
बृहस्पति उपाध्याय
हिन्दी प्रकाशन मन्दिर
इलाहाबाद

चौथी बार १९५१
मूल्य
सवा रुपया

मु
श्रीरंजन
सेवा प्रेस, १८, हिवेट रोड
इलाहाबा

विषय सूची

आदर्श बालक

: १ :

वीर बादल

तेरहवी शताब्दि बीत रही थी। निर्दयी और इन्द्रियलोलुप पठान अलाउद्दीन खिलजी भारत का सम्राट था। उसने अपनी दुर्धर्ष सेना के बल पर राजपूताना को कुचल डाला था, और अब वह राजपूताने की बची-खुची आबरू को लूटने को दलबल लेकर चित्तौर पर चढ आया था। चित्तौर पर दुर्भाग्य उदय हुआ था। इस बार उसका इरादा चित्तौर-विजय का न था प्रत्युत चित्तौर की महारानी पद्मिनी को हरण करने का था। चित्तौर की आन्तरिक अवस्था अच्छी न थी, राणा लक्ष्मणसिंह नाबालिग थे और उनके चचा भीमसिंह चित्तौर के कर्ताधर्त्ता थे, पद्मिनी भीमसिंह की पत्नी थी। वह पद्मराग मणि के समान सुन्दर और कान्तिवाली थी। उसके सौन्दर्य की तारीफ राजपूताने भर मे फैली हुई थी और सौन्दर्य लोलुप अलाउद्दीन पूरी शक्ति से उस सौन्दर्य-कुसुम को लूटने चित्तौर पर चढ़ दौड़ा था।

किला चारों ओर से घिरा हुआ था और किसी भी आदमी का किले से बाहर जाना या बाहर से भीतर आना सम्भव न था।

मान जनक प्रतीत हुआ; उन्होंने तलवारे खींच लीं, और भाँति-भाँति के कुवाक्य दूत और सुलतान को कहे। प्रत्येक राजपूत इस अपमान के बदले प्राण देने को तैयार था, पर राणा भीमसिंह गम्भीर चिंता मे निमग्न हो गये थे। उनके ऊपर चित्तौर की रक्षा एवं हजारों राजपूतों की जीवन रक्षा का दायित्व था। उन्होंने सोचा--क्या सर्वनाश से बचने के लिये यह अपमान सह लिया जाय। उन्होंने मन्त्रियों से, सर्दारों से, भाई बन्दों से और दर्बारियों से परामर्श किया और रानी पद्मिनी से भी सब हकीकत कह दी। रानी ने साहसपूर्वक कह दिया कि यदि मेरा यह अपमान करके वह दैत्य टल जाय और चित्तौर की हजारों बहू-बेटियाँ विधवा होने से बच जायँ तो मैं अपनी आबरू का बलिदान देने को तैयार हूँ, परन्तु प्रत्यक्ष नहीं—दर्पण मे ही वह पशु मेरी छवि की एक झलक देख सकता है

राणा भीमसेन ने सभासदों को सब ऊँच नीच समझा कर अन्त मे प्रस्ताव की स्वीकृति दूत को दे दी। उन्होंने यह शर्त की-कि सुलतान अकेले निःशस्त्र किले में आवेंगे और दर्पण मे महाराणी की एक झलक देख कर तुरन्त लौट जावेंगे, तथा तुरन्त ही चित्तौर का घेरा उठा लेंगे।

अलाउद्दीन ने राणा की इस उदारता की बड़ी तारीफ की और मित्रता की बहुत लम्बी-चौडी बातें राणा के पास भेजीं। ठीक समय पर वह निःशस्त्र अकेले किले मे आ पहुँचा।

२

सुलतान का प्रताप अद्भुतपूर्व था, और वह विश्वासी व्यक्ति न था। किले का प्रत्येक राजपूत इसे अपना जातीय अपमान समझे हुए था। परन्तु राणा अपने निश्चय पर दृढ़ था, वह गम्भीर और मौन था—आज महलों में अद्भुत उदासीनता छाई हुई थी, राजपूत बड़ी-बड़ी काली दाढ़ियों के बीच होठों को दबा, भौंहें संकुचित किए। वे बड़ी-बड़ी ढालें कन्धों पर, तलवारें म्यान में लिये लाज और अपमान से नीची आँखें किये खड़े थे, सुलतान सबके बीच साहस और उन्माद की मूर्ति बना धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। राणा ने किले के फाटक पर उसका स्वागत किया था। राजपूतों के वचन पर उसे भरोसा था। वह निःशस्त्र तथा एकाकी था। वह चपल घोड़े पर सवार था। उसकी बाईं ओर राणा चुप-चाप एक घोड़े पर सवार आगे बढ़ रहा था, और पीछे चुने हुए सवार थे। सुलतान अपनी मित्रता और प्रसन्नता प्रकट करने के लिये बहुत सी बातें करता जाता था।

'जनानी ड्योढ़ियों पर सब घोड़े से उतर पड़े। वे उन सीढ़ियों पर चढ़े जहाँ किसी यवन के पाँव नहीं पड़े थे, राजपूत क्रोध से एवं बाँदियाँ भय से थर-थर काँप रही थीं, सन्नाटा था, विरद गाने वाले चुप बैठे थे, दासियें मुँह पर घूँघट डाले सिमटी खड़ी थीं। नौबतखाने के नक्कारे औंधे पड़े थे।

सुलतान ने कहा—'महाराणा आज से हम दोनों दोस्त हुए।

हुए न, कहिये ?'

महाराणा ने खिन्न मन होकर धीरे से कहा-सुलतान की यदि यही इच्छा है तो मैं वचन देता हूँ कि राजपूत हमेशा सच्ची दोस्ती निभाहेंगे।

इसका मुझे पूरा भरोसा है, आप देखते है कि आप पर यकीन करके खाली हाथ आपके किले मे आ गया हूँ। उम्मीद है आप भी मुझ पर भरोसा करेंगे।

राणा ने गम्भीर स्वर मे कहा—तो क्या सुलतान मित्रता की ओर इतना कदम उठाकर भी वह अपमानजनक काम करने का इरादा रखते है जो राजपूतों के लिये बिलकुल नया है।

यकीन रखिये महाराणा, मेरी नियत कुछ बुरी नहीं, जैसा हम लोगों में कौल-करार हुआ है, उसके पूरा होते ही मै तुरन्त दिल्ली लौट जाऊँगा।

राणा ने ठण्डी साँस लेकर एक बार सर्दारों की ओर देखा—वह नीची आँखे किये खड़े थे, फिर उसने चाँदी की भाँति सफेद महलों के आकाश को छूने वाले सुनहले कंगूरे को देखा जो सूर्य की धूप मे चमक रहे थे, तब सूर्यवंश के उस अधिकारी ने एक ठण्डी साँस ली और कहा—तब आइये राजपूत अपनी बात पूरी करेंगे। दोनों आगे बढे। दो कदम बाद सुलतान झिझककर खड़ा हो गया उसने देखा—सामने पूरे कद के आइने में वह अलौकिक सुन्दरी—जैसे रत्नों से जडी तस्वीर हो, लाज से सिर नवाये खडी

है, एक झलक सुलतान ने देखा, और वह झलक दर्पण में गायब हो गई, सुलतान निश्चल हो गया, इस सौन्दर्य की उसने कल्पना भी नहीं की थी—महाराणा ने कम्पित कण्ठ से कहा—राजपूतों का वचन पूरा हुआ, अब सुलतान को अपना वचन निभाना चाहिये।

सुलतान सोते और सोते से जागे हुये मनुष्य की भाँति उसने कहा—'हाँ, हाँ, बस अब मुझे आपकी रानी पर यकीन हो गया महाराणा, इस दौरान मैं आप को मुबारकबादी देता हूँ, आपकी महारानी इन्सान नहीं हैं, इन्सान में इतनी खूबसूरती नहीं हो सकती।'

राजपूत भीतर रो रहे थे—राणा ने अधीर होकर कहा—राजपूती मर्यादा को निभाने के लिए, सुलतान जैसे प्रतिष्ठित मेहमान को विदा करने हम बाहर की ड्योढ़ी तक चलेंगे, परन्तु सुलतान अपना वचन कब पूरा करेंगे।

'मैं अभी अपनी छावनी उठाता हूँ', सुलतान ने वापस लौटती बार कहा।

वे धीरे-धीरे चुपचाप लौट रहे थे, सिर्फ घोड़ों की टाप सुनाई दे रही थी। दोनों चुप थे। राणा उस अपमान की बात सोच रहे थे, जो अभी हो चुका था और सुलतान उस बात की जो वह अभी करने वाला था,

फाटक आ पहुँचा, राणा ने कहा—मैं सुलतान के कष्ट करने

के लिए क्षमा माँगता हूँ।

'नहीं, नहीं माफी मुझे माँगनी चाहिये, क्योंकि मै ने आपको बड़े भारी तरद्दुद मे डाल दिया, मगर खैर, इससे हमारी और आपकी दोस्ती पक्की हो गई। अरे, आप रुक क्यों गये, जरा और आगे चलिये, वहाँ मेरे आदमी हैं, मै आपके लिये कुछ सौग़ात लाया हूँ जो आप को क़बूल करनी होगी, आशा है आप इन्कार नही करेंगे।'

राणा झिझका, पर आगे बढा। उसने कहा आप की दोस्ती ही मेरे लिये सब से बडी सौग़ात है।

सुलतान ने अत्यन्त आग्रह से कहा—'नहीं, नहीं, आप अगर इन्कार करेंगे तो मै समझूँगा कि आपका दिल मेरी तरफ से साफ़ नहीं है।'

फाटक क़दम-क़दम पर दूर हो रहा था, राणा कुछ कह न सके। एकाएक पठानों का एक बड़ा दल जँगल से निकल आया, और वात-की-वात मे राणा को घेर लिया। राणा तलवार भी न निकाल पाया, उसकी मुश्के कस ली गईं। राणा ने लाल-लाल आँखे करके कहा—"यही सुलतान की दोस्ती है?"

"दोस्ती? काफिर की और दीनदार की कैसी दोस्ती? या तो वह परी पैकर मेरे हवाले कर, वरना चित्तौर की ईंट-से-ईंट बजा दूँगा, और तेरी बोटियाँ चील कौवे खायेंगे।"

राणा ने घृणापूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—"धिक्कार है तुझ

"हाँ तुम मेरी जगह। यद्यपि तुम अभी १२ वर्ष के बालक हो पर क्षत्रिय-पुत्र को जूझ मरने के लिये यह उम्र काफी है। तुम यह काम कर सकोगे?"

"मुझे क्या करना होगा?"

तुम सब हथियार बाँध कर मेरी पालकी मे बैठोगे। पालकी के साथ ७०० डोलियाँ मेरी सहेलियों की होंगी; प्रत्येक डोली मे बाँदी की जगह दो दो शूरवीर हथियार बाँधकर बैठेंगे और चार-चार शूरमा कहार का भेष धरे डोली उठायेंगे जिनके हथियार कपडों में छिपे रहेंगे।

"इसके बाद, काकी जी।"

"इसके बाद राणी-राणा से अकेले मे भेट होगी। पास मे तुम्हारे काका गोरा घोड़े पर सवार होंगे; वे तुरन्त ही राणाजी को घोडा-हथियार दे देंगे और किले की ओर चलता कर देंगे, फिर तुम डोली से निकल कर अपने राजपूती हाथ के जौहर दिखाना।"

"ऐसा ही होगा काकी जी, हम सुलतान को दगाबाजी का वह पाठ पढावेंगे जिसका नाम।"

"तब जाओ बेटे, अपने गोरा काका से कहो वह सुलतान से कहला भेजें कि राणी आपके पास आने को राजी है मगर वह अपनी बाँदियों और सहेलियों के साथ आवेंगी। उन्हे परदे मे उतारने का बन्दोबस्त कीजिये, और राणा को छोड दीजिए तथा रानी को एक घंटे राणा से एकान्त में मिलने की आज्ञा मिलनी

चाहिए, बस।"

"समझ गया। अभी जाकर गोरा बादल से सब इंतिजाम करता हूँ।"

"जाओ पुत्र, ईश्वर तुम्हें सफलता दे।"

सुलतान की छावनी में जश्न मनाया जा रहा था। उसे खबर लग चुकी थी कि पद्मिनी अपने महल से चल चुकी है; वह पहाड़ से उतरती हुई डोलियों की कतारें देख-देखकर खुश हो रहा था। वह अपनी चालाकी पर खुश था। एक-एक क्षण उसका कठिनाई से बीत रहा था। सिपाही शराब ढाल रहे थे और नाच-गान में मस्त थे। किसी को किसी की सुध न थी।

धीरे-धीरे डोलियाँ पठानों के शिविर में आ गईं और वे सब एक बड़े से तम्बू में उतार दी गईं। रानी ने कहला भेजा— अब आप एक घण्टे के लिये राणा से एकान्त में मिलने की इजाजत दे दें—इसके बाद तो मैं आप की हूँ ही।

बादशाह ने हँसकर कहा—"अच्छा, अच्छा इसमें कोई हर्ज नहीं है। राणा अच्छा आदमी है, मगर एक घण्टे बाद मैं फिर कुछ न सुनूँगा।"

\+ + +

"यह मैं क्या देख-सुन रहा हूँ, अच्छा होता इससे पहले ही मर जाता। पद्मिनी, तुम से ऐसी आशा न थी। अब तुम मुझे अपना मुँह दिखाने का साहस करती हो—" राणा भीमसिंह ने

क्रोध से थरथर काँपते हुए पालकी के सुनहरी काम के पर्दे की ओर अग्निमय नेत्रों से देखते हुए कहा।

पर्दा हिला और बादल ने मुँह निकाल कर कहा—"काका जी, सावधान!"

"कौन तुम हो बादल।"

"जी हाँ, और सातसौ डोलियों मे जुझाऊ वीर भरे है, हम सुलतान से निबट लेंगे। बाहर गोरा काका घोड़ा लिए खडे हैं; आप घोड़े पर चढ किले मे जा पहुँचे। और फिर सेना लेकर सुलतान की सेना पर टूट पडें तब तक हम निबट लेंगे। लीजिए तलवार।"

"शाबाश बेटे, हम आज दगाबाजी का......

"चुप...... ज्यादा बाते न कीजिए। खीमे के पीछे घोड़ा खडा है, आप जाइये। हम शत्रुओं को रोकते है।" बादल पालकी से निकल कर खड़ा हुआ, सकेत होते ही हजारों राजपूत हर-हर करके तलवारें सूँतकर निकल पड़े। रङ्ग-मे-भङ्ग पड़ गया। छावनी मे उथल-पुथल मच गई। जो जहाँ था वहीं काट डाला गया। तैयारी का अवसर ही न था, मारो-मारो की आवाज ही सुनाई पड़ती थी; घायलों की चीत्कार, मरते हुओं की कराहने की आवाज और राजपूतों की हर-हर महादेव तथा पठानों की अल्लाहो-अकबर की तुमुल-ध्वनि हो रही थी, रुण्ड मुण्ड कट-कटकर गिर रहे थे। राणा भीमसिंह तीर की भाँति किले की ओर जा रहे थे, किले पर

राजपूत तलवारें चमचमा रही थीं।

बादल को पठानों ने घेर लिया था पर यह बालक किले के नीचे पथ पर खड़ा दोनों हाथों से तलवार चला रहा था। गोरा ने तलवार चलाते-चलाते कहा—'वाह बेटे, खूब खेल खेल रहे हो ?'

"सावधान काका जी, यह बांके की मार होना है।"

तलवार चलाते-चलाते गोरा ने कहा—हूँ नहीं, राणा महल में पहुँच गये, अब तोप छूटी।

तलवारें और तीर चल रहे थे, गोरा ने कहा—बादल! अब मेरे हाथ नहीं चलते।

बादल ने कहा—काका जी हम उस लोक में मिलेंगे। गोरा घाव खाकर गिर पड़े। बादल ने देखा और शत्रुओं को चीरते हुए जोर से उनके लाश के पास पुकारा, मैं काकाजी से आपकी वीरता का बखान करूँगा, महाराणा सेना लेकर आ रहे हैं।

राणा ने आते ही शत्रुओं को गाजर-मूली की भाँति काटना शुरू कर दिया। शत्रु के पैर उखड़ गये। सुलतान पिटे-कुटे की तरह सब सामान छोड़कर भागा। उसकी छावनी जला दी गई। बादल के शरीर पर अनगिनत घाव थे। उसके मुमूर्षु शरीर को महलों में लाया गया। शरीर से एक-एक बूँद रक्त निकल गया था। और उसके होठों पर हँसी की रेखा थी।

: २ :

कुमार सिद्धार्थ

सन्ध्या का मनोरम काल था, पश्चिम दिशा लाल हो रही थी, गायें टल-टल टाल बजाती हुई अपने बछड़ों से मिलने की उमंग मे घर लौट रही थीं, पक्षीगण उड-उडकर बसेरा लेने जा रहे थे।

कपिलवस्तु नगर के बाहर राजोद्यान मे दो राजकुमार धनुष-बाण लिये, धीरे-धीरे राज-महल की ओर लौट रहे थे, एक का नाम देवदत्त था, दूसरे का सिद्धार्थ। पक्षियों की उडती पंक्ति देख कर राजकुमार सिद्धार्थ ने कहा—

'अहा, देखो भाई इन पक्षियों की पंक्ति कैसी सुन्दर लग रही है, यह राजहस उडे चले जा रहे है।'

देवदत्त ने देखा, एक कुटिल हास्य किया, धनुष पर बाण चढाया और राजहसों के उड़ते समूह पर छोड दिया। सिद्धार्थ का दिल धड़कने लगा, उसने घबराई हुई दृष्टि से आकाश की ओर देखा, एक राजहंस बाण-विद्ध होकर लोहू टपकाता हुआ सुध-बुध खो तड़पता हुआ पृथ्वी की ओर आ रहा था; शेष चीत्कार करते हुए भयभीत हो भाग रहे थे।

देवदत्त यह देखकर हँसने लगा, पर सिद्धार्थ की आंखों में पानी भर आया। उसने दौड़कर भूमि पर छटपटाते हुए राजहंस को गोद में उठा लिया, हस के पर में तीर घुसा हुआ था और कान में से रक्त बह रहा था। उसके जीवन की आशा न थी।

महाराज ने सिद्धार्थ की प्रेम भावना को देखा, परन्तु देवदत्त की माँग न्यायोचित थी, आखेटपर मारनेवालेका ही अधिकार होता है।

राजा के सामने अद्भुत न्याय विषय था, सारी राज-सभा कौतूहल से इस अभियोग के निर्णय को सुनने के लिये उत्सुक थी। कुछ देर चुप रहने के बाद महाराज ने सिद्धार्थ से पूछा—"पुत्र राजहंस किस का है ?"

कुमार ने नम्रतापूर्वक कहा—"महाराज यह मेरा है !"

देवदत्त ने चटक कर कहा—नहीं, कुमार झूठ बोल रहे है, यह पक्षी मेरा है।"

महाराज ने गर्दन टेढी करके देवदत्त से कहा—"किस तरह, तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ?"

यह आकाश मे उड़ा जा रहा था, मैंने इसे बाण-विद्ध किया, और यह घायल हो पृथ्वी पर आ गिरा। आप राजकुमार से ही यह बात पूछ लीजिए।

सिद्धार्थ ने कहा—महाराज देवदत्त सत्य कहते है।

महाराज ने पूछा—तब यह तुम्हारा पक्षी कैसे हो गया ?

कुमार ने कहा—महाराज देवदत्त ने इसे मार गिराया था—पर मैने इसका उपचार किया। यदि मैं उपचार न करता तो यह मर गया होता। देवदत्त का अधिकार इस पर तब था जब उन्होंने उसे घायल करके गिराया था पर अब मेरी सेवा से यह स्वस्थ हो चला है इस लिए इस पर अब मेरा अधिकार है।

: २ :

कुणाल

सम्राट अशोक ने प्रथम अपनी तलवार से और फिर अपनी दिव्य-दया से पृथ्वी के महान् पुरुषों मे अपना नाम लिखाया है। वे अपने युग में समस्त भारतवर्ष के सम्राट थे। इन्हीं के पुत्र राजकुमार कुणाल थे जो अत्यन्त रूपवान् और सुशील थे। बाल्यकाल ही मे कंचना नाम की एक सुन्दरी कन्या से उनका विवाह कर दिया गया था। दोनों अपने विनोद और उल्लास-मय जीवन से राजमहल को आनन्दित करते रहते थे।

कुणाल को सम्राट बहुत प्यार करते थे और वे कभी उसे आँखों की ओट न होने देते थे। तिष्य-रक्षिता, सम्राट की छोटी महिषी, कुणाल पर मोहित थी। एक बार उसने कुणाल को एकान्त में पाकर उससे अपनी इच्छा प्रकट की, पर कुणाल ने विनयावनत होकर कहा—आप मेरी माता हैं मै आपकी ओर नहीं देख सकता। महारानी तिष्य-रक्षिता ने रूप और काम के वशीभूत हो कहा—कुमार एक बार मेरी ओर तो देखो। कैसा मेरा रूप-यौवन है।

परन्तु कुणाल ने वही जवाब दिया। क्रुद्ध होकर तिष्य-रक्षिता ने कहा—अच्छी बात है। तुमने जिन आँखों से मेरा अपमान किया है, उन्हे समय आने पर नष्ट कर दिया जायगा। वह क्रुद्ध [illegible] की भाँति फुफकारती हुई चली गई। अवसर पाकर उसने कुणाल को महाराज से कहकर तक्षशिला भिजवा दिया, वहाँ

प्रजा ने विद्रोह किया था—पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर कुणाल तक्षशिला को चल दिये। विद्रोह को शान्त करके पंजाब का शासन करने लगे। कंचना इनके साथ थी।

२

सम्राट अशोक रोगी हुए। बड़े बड़े वैद्य यत्न करके हार गए पर महाराज को कोई लाभ न हुआ। उनके पेट में कृमि हो गये थे और सिर में बहुत पीड़ा रहती थी। धीरे-धीरे सम्राट को जीवन से निराशा होने लगी।

तिष्यरक्षिता बड़ी बुद्धिमती थी, उसने आज्ञा दी कि राज्य में कोई ऐसा रोगी हो तो उसे लाओ। बहुत खोज ढूँढ पर एक कुम्हार मिला, जिसे वही रोग था जो सम्राट को था। महारानी ने उसका पेट चिरवा डाला। उसकी आँतों में बहुत से कीड़े निकले, रानी ने उन्हें भिन्न-भिन्न औषधियों में डाला, पर वे न मरे। जब वह लहसुन के अर्क में डाले गये तो मर गये। इस आविष्कार से रानी बड़ी प्रसन्न हुई और सम्राट से कहा—कि यदि मैं आपको आरोग्य कर दूँ तो आप मुझे क्या देंगे।

सम्राट् ने कहा—तुम्हारे लिए मेरे पास अदेय क्या है, सारे साम्राज्य का अधिपति मैं तुम्हारे अधीन हूँ; तुम्हें क्या चाहिये।

रानी ने कहा—सिर्फ एक दिन का राज्य-शासन चाहिए।

सम्राट ने हँस कर कहा—जब तुम्हारी इच्छा हो एक दिन राज्य-शासन कर सकती हो।

रानी ने सम्राट् को लहसुन का अर्क देना शुरू किया, इससे थोड़े ही दिन में सम्राट् के पेट के कीड़े मर गये और उनके सिर-दर्द का रोग भी जाता रहा, थोड़े दिन मे वे बलवान भी हो गये।

एक दिन रानी ने अवसर पा सम्राट को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाई और राजमुहर माँगी। सम्राट् ने उसे एक दिनके लिए समस्त भारत का राज और राज की मुहर भी देदी।

समस्त भारत का साम्राज्य पाकर रानी ने सिर्फ एक आज्ञा-पत्र तक्षशिला के हाकिम के नाम निकाला जिसमे लिखा था कि कुणाल की आँखे निकाल कर उसे राज्य से निकाल दो। आज्ञा-पत्र पर राज्य की मुहर कर दी गई। कुछ दिन बाद जब यह आज्ञा-पत्र तक्षशिला पहुँचा तो वहाँ का अधिकारी बहुत चिन्तित हुआ, उसे आज्ञापत्र पर सन्देह हुआ। वह समझ ही न सका कि कैसे सम्राट् अपने पुत्र के लिए यह भयानक आज्ञा दे सकते है। उसने सन्देह की निवृत्ति के लिएकुणाल से भी इसकी चर्चा की।

कुणाल ने आज्ञा-पत्र को पढ़ कहा—राज मुहर को मैं पहचानता हूँ, आप राजाज्ञा का पालन कीजिए।

परन्तु हाकिम ने कहा—कुमार, भला मैं कैसे इस निर्दय काम को कर सकता हूँ, मै राज-द्रोह करता हूँ आप मुझे दण्ड दीजिये।

कुणाल ने कहा—नहीं, नहीं, राजाज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता। मैं सम्राट और पिता दोनों की आज्ञा मानकर अपनी आँखे स्वयं निकाल देता हूँ। यह कह कर कुमार ने विषम साहस

ने अपनी आँखें निकाल डालीं, और अन्धा हो गया ।

कंचना ने सुना तो पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी, परन्तु कुणाल ने उसे धैर्य बंधाया और कहा—अब मुझे राज्य से बाहर जाना चाहिये । बहुत समझाने पर भी कंचना ने कुणाल का साथ न छोड़ा । उसने कहा—मृत्यु ही हमें अलग कर सकती है । चलो हम इस पापी राज्य से निकल चलें । दोनों निकल गये । कंचना ने अन्धे राजकुमार का हाथ पकड़ा, लोग करुणा से उन्हें देख रहे थे, और वे चुप-चाप सब वैभव त्याग कर पैदल जा रहे थे ।

आज्ञा पालन की सूचना शासक ने भेज दी थी । जिसे महारानी ने ऊपर-ही-ऊपर ले लिया । और यह बात उड़ादी कि कुणाल और कंचना भिक्षु हो गये । सम्राट् को प्रिय पुत्र के वियोग का दुःख तो हुआ, परन्तु उन्होंने यह समझ कर कि पुत्र ने धर्म-मार्ग का अनुसरण किया है, सन्तोष कर लिया ।

दोनों प्राणी देश-विदेश घूमते फिरे । दोनों गान-विद्या में प्रवीण थे । रूप भी साधारण न था । जहाँ जाते, भीड़ लग जाती । उनके तेज और लक्षणों से उनका राज-वंशी होना प्रगट होता था पर वे किसी को अपना परिचय नहीं देते थे ।

धीरे-धीरे १५ वर्ष बीत गये । वे समस्त दक्षिण भारत का भ्रमण कर चुके थे, उनकी वासना मिट चुकी थी, वे संसार से विरत हो चुके थे । घूमते-घूमते वे बंगाल में आये । और फिर एक दिन २० वर्ष बाद सन्ध्या समय पटने में आ पहुँचे । एक अतिथिशाला

में उन्होंने डेरा डाला—और नगरमे गा गा कर भीख मांगने लगे। उनका रूप-रङ्ग सब बदल चुका था, पर उनकी आकृति में ऐसी मनोहरता थी और उनका कण्ठ स्वर ऐसा मधुर था जिसे सुनकर लोग मोहित हो जाते थे। सम्राट को गजशाला का अध्यक्ष गान विद्या का बड़ा प्रेमी था, उसने उनका गाना सुनकर कहा—

"कौन हो भाई?"

"बटोही है।"

"कहाँ रहते हो?"

"आज यहाँ कल वहाँ।"

"कहाँ से आ रहे हो?"

"योंही घूमते फिरते है।"

उसने उन्हे डेरे में सोने की जगह दी। और दया करके भोजन भी दिया। रात भर वे आराम से सोये, प्रभात के समय कुणाल ने भैरवी की एक तान ली। सम्राट् जाग चुके थे। वह तान उनके कान मे पडी। उन्हे ख्याल आया; कि कुणाल ऐसा ही गाता था। यह कौन गायक है। उन्होंने द्वारपाल को भेज कर गायक को तुरन्त हाजिर करने की आज्ञा दी।

दोनोंने सम्राट्के सामनेआकरउनकी आज्ञा से गाना गाया।

सम्राट ने पूछा—"कौन हो?"

"गरीब भिखारी हैं महाराज, लोगों को गाना सुनाते है, जो कोई खाने को दे देता है उसी मे निर्वाह करते है।" बात कहते-

कहते कुणाल का गला भर आया। महाराज को सन्देह हुआ, उन्होंने कहा—नहीं, नहीं, सच कहो तुम कौन हो।

कुणाल अब अपने को न रोक सका, "मैं कुणाल हूँ", कहकर वह महाराज के पैरों पर गिर गया। सम्राट् ने उसे उठाकर छाती से लगा कहा—"अरे, पुत्र, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ?"

तब कुणाल ने सब बातें कह सुनाईं। दर्बारी धन्य-धन्य कहने लगे। महाराज अविरल आँसू बहाने लगे, पर तुरन्त ही क्रुद्ध होकर उन्होंने लाल-लाल आँखों से मन्त्री की ओर देखकर कहा —"किसने आज्ञापत्र लिखा था ?"

सब पुरानी बातों की खोज हुई। रानी ने अपना दोष स्वीकार कर लिया। सम्राट् ने तत्काल आज्ञा दी—रानी की आँखें निकाल ली जायँ और फिर उसके शरीर के एक-एक अङ्ग काटे जायँ।

दर्बार में सन्नाटा था। सम्राट से कुणाल ने करबद्ध होकर कहा—महाराज, मेरी एक प्रार्थना है।

सम्राट ने कहा—कहो पुत्र तुम्हारी प्रार्थना अवश्य पूर्ण होगी।

महाराज, माता को क्षमा कर दीजिए। संसार के नेत्र खोकर मैंने दिव्य दृष्टि पाई है, मैं माता का बहुत उपकृत हूँ। सभासद धन्य-धन्य कह उठे और कुणाल की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। सम्राट् ने पुत्र की प्रार्थना स्वीकार की, पर फिर उन्हें राज-पाट से विरक्ति हो गई। और उन्होंने साम्राज्य कुणाल को सौंप संन्यास ग्रहण कर लिया।

: ४ :

राजकुमार चूड़ाजी

मेवाड के महाराणा लाखा महावीर पुरुष थे। उन्होंने बडे-बड़े युद्ध फतह किये, और बडी-बडी लडाइयाँ लडी थीं। जीवन के सब दिन व्यतीत करके अब वे वृद्ध हो चले थे। उनके सारे शरीर पर घावों के चिह्न थे, और वे राजपूती शान के जीते-जागते अवतार थे। राणा जी के पाटवी कुमार का नाम चूडाजी था। चूडाजी मे पिता के सभी गुण मौजूद थे, वे बड़े साहसी, सत्यव्रती, चतुर और विनयी थे। उनकी सत्यता की ऐसी धाक थी कि उनके मुँह से निकली बात पत्थर की लकीर समझी जाती थी। लोग समझते थे, चाहे सूरज पच्छिम मे उगे, पर चूडाजी की बात इधर उधर नही हो सकती।

दरबार लगा था। राज्य के सब काम यथावत हो रहे थे। सब सर्दार अपने-अपने आसनों पर बैठे थे, चोबदार ने अर्ज की—कि मारवाड़ के राव रणमल जी के पुरोहित आए है। राणा जी ने उन्हे दर्बार मे आदर-पूर्वक ले आने का आदेश दिया। दर्बार मे आकर पुरोहित ने राणाजी को आशीर्वाद दिया, और कहा—मारवाड़ के राव रणमल जी ने आपकी सेवा में नारियल भेजा है। वे पाटवी-कुमार चूडाजी के साथ अपनी पुत्री की सगाई किया चाहते हैं। यह सुनकर महाराणा ने हँसकर अपनी सफेद दाढी पर हाथ फेरते हुए कहा—ठीक है भई, अब इस सफेद

दाढ़ी वाले के लिये थोड़े ही कोई नारियल भेजेगा। दरबारी लोग राणा जी की बात सुनकर हँस दिये।

चूण्डाजी भी दरबार में उपस्थित थे। राणाजी की बात सुनकर वे गंभीर मुद्रा करके कुछ सोचने लगे। राणा ने दरबारी लोगों से इस सम्बन्ध की सलाह ली तो सभी ने कहा—बहुत अच्छा, मारवाड़ का घराना सब भाँति उत्तम है। परन्तु जब चूण्डा जी को आगे आकर नारियल लेने और टीका कराने को बुलाया गया तो उन्होंने हाथ जोड़कर पिता से कहा—पिता जी, आपने यद्यपि हँसी में इस नारियल के लिए इच्छा प्रकट की है—परन्तु मारवाड़ की कन्या अब मेरी माता हो चुकी। उसके साथ आप ही को विवाह करना होगा।

चूण्डाजी की यह बात सुनकर सर्वत्र सन्नाटा छा गया। राणा-जी का मुँह उतर गया। वे बड़ी दुविधा में पड़ गये। इस आयु में विवाह करना हास्यास्पद था, और नारियल लौटा देने से राव रणमल से दुश्मनी मोल ली जाती थी—जो किसी भी हालत में राणाजी को स्वीकार न था। उन्होंने तथा दरबारियों ने चूण्डाजी को बहुत समझाया-बुझाया, परन्तु चूण्डा जी ने कहा—मैं पिता जी की आज्ञा से अभी सिर काटकर दे सकता हूँ परन्तु मारवाड़ की कुमारी तो मेरी माता हो चुकी।

राणा जी को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—अच्छी बात है, राव रणमल का नारियल तो मारवाड़ लौट नहीं सकता। मैं

मारवाड की पुत्री से व्याह करूँगा, परन्तु चण्ड—याद रखो, इस कुमारी से जो सन्तान होगी वही राज्य की अधिकारी होगी। तुम्हारा पाटवी पद तब न रहेगा।

पिता की इस धमकी को सुन चूडाजी ने हँसकर कहा—पिता जी मै आप के चरणों की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं मारवाड की माता के पुत्र को राजा मानकर उसी भाँति उसकी सेवा करूँगा जैसे आपकी करता हूँ।

चूडाजी की यह प्रतिज्ञा सुनकर सब दर्बारी धन्य-धन्य कर उठे। राव रणमल के पुरोहित ने भी धन्य-धन्य कहा—राजकुमार के इस राज्य-त्याग की चर्चा आग की भाँति राजपूताने मे फैल गई। चारण लोग कविता रच-रच कर उसका वखान देश-विदेश मे करने लगे।

६५ वर्ष के बूढ़े महाराणा के साथ १३ बरस की मारवाड़ के राजा की पुत्री का विवाह हो गया। और विवाह के दो बरस बाद ही उसके राजपुत्र हुआ जिसका नाम मोकल रक्खा गया। धीरे-धीरे पाच साल बीत गये। इसी बीच मे राणाजी को एक बडे भारी युद्ध मे जाने की आवश्यकता पड़ी। राणाजी ने सोचा—चूड़ाजी इन सात वर्षों मे अपनी प्रतिज्ञा भूल गया होगा। उन्होंने चूडाजी को एकान्त मे बुलाकर कहा--पुत्र मै बडे कठिन मोर्चे पर जा रहा हूँ। बुढापे की उम्र है। क्या जाने लौटना हो या नही, मैं चाहता हूँ कि तुम्हे राज-तिलक देकर और मोकल को तुम्हे सौंपकर मैं निश्चिंत

हो जाऊँ।

चूँडाजी ने कहा—पिताजी, राजा तो मोकल ही होंगे। और मैं उनकी सेवा करूँगा। मेरी प्रतिज्ञा अटल है। महाराणा कुछ न बोले। वे युद्ध करने को चले गये। चूँडाजी ने [illegible] में ५ वर्ष के बालक मोकल को गद्दी पर बैठाया और आप उसके नाम से राज-काज देखने और सब प्रबन्ध-व्यवस्था करने लगे। उन्होंने राज्य की ऐसी व्यवस्था की कि सब तरफ शान्ति और सुव्यवस्था हो गई और प्रजा सुखी और आनन्द में रहने लगी।

परन्तु मोकल के मामा राव जोधाजी के मन में राज्य का लोभ आ समाया। उन्होंने सोचा भानजा तो अभी नादान है और उसकी माँ मेरी बहिन है यह भी बेसमझ है, यह अच्छा मौका है, मैं जाकर ऐसी खटपट करूँगा कि चूँडा को निकलवा कर बाहर करूँगा और राज्य को हथिया कर अपने कब्जे करूँगा। यह सोचकर बाप-बेटे दोनों ने मारवाड़ से चलकर मेवाड़ के राज-महल में आ डेरे जमाए। चूँडाजी ने उनका खूब आदर सत्कार किया। परन्तु वे तो चूँडाजी की जड़ काटने ही आए थे। वे मौका ढूँढते रहे और जब मौका पाते मोकल की माता से चूँडाजी की बुराइयाँ करते थे। धीरे-धीरे दोनों बाप-बेटों ने मिलकर भोली-भाली रानी के दिल में यह बात बैठा दी कि चूँडाजी तुम्हारे बेटे को मरवाकर स्वयं गद्दी हथियाना चाहता है। इसपर एक दिन रानी ने चूँडाजी को बुलवा कर कहा—तुम मेरे पुत्र को मरवाने

के लिए जो-जो चाले चल रहे हो सब मैं जानती हूँ। अब तुम्हारे ऊपर मुझे कुछ भी भरोसा नहीं रहा। तुम्हे राज्य के लोभ ने सताया है। सो अब तुम्हारा मेवाड में रहना नहीं होगा।

चूड़ाजी को बहुत दुख हुआ; उन्होंने हाथ जोड़ नम्रता से कहा—जैसी माता जी की आज्ञा। आप अपना राज्य सम्हालिए, आज से चित्तौर का भाग्य आपके अधीन है। मैं कहीं भी जाकर आध सेर आटा कमा लूँगा। इतना कह और प्रणाम कर वे महल से चल दिये।

मेवाड़ से चलकर वे सीधे मालवे के।सुलतान के पास पहुँचे और एक नौकरी माँगी। सुलतान ने चूड़ाजी की बड़ी खातिर की और उन्हें अपनी सेना मे ऊँचा पद दिया। खर्च के लिए जागीर लगा दी। वे धीरज से अपने दिन काटने लगे। पर रानी के दुर्व्यवहार का उनको बड़ा दुःख हुआ।

उधर चूडाजी के जाते ही जोधाजी और राव रणमल की आ बनी। रावजी मोकल को गोद मे लेकर गद्दी पर बैठते थे। यह देखकर मेवाड़ के सरदारों की आँखों मे खून उतर आता था। पर वे मन मसोस कर रह जाते थे। उधर जोधाजी मन्त्री बनकर राज के कर्ता-धर्ता ही हो गये थे। वे बड़े-बड़े ओहदों पर से मेवाड़ वालों को दूर करके,मारवाड वालों को भरती कर रहे थे। थोड़े ही दिनों में जहां देखो वहीं सेना मे और दरबार में जिम्मेदार पदों पर मारवाड़ ही के आदमी दिखाई देने लगे। राज-माता को

को कुछ खबर ही न थी, और वह खुश था कि अब पुत्र का संकट टल गया, पर मोकल की माय सब मतलब समझ गई थी। वह चुप-चाप राव रणमल और जोधाजी के कामों को बारीकी से देखा करती थी, जब उसे दोनों की सारी चालाकियों का पूरा-पूरा पता चल गया, तब अवसर पाकर उसने एक दिन राजमाता से कहा—महारानी जी, आपने चूड़ाजी को राज से निकाल कर अपने लिए काँटे बो दिये। जहाँ देखो, वहीं राज में मारवाड़-ही-मारवाड़ के आदमी भर रहे हैं। बेचारे चित्तौर वाले मारे मारे फिर रहे हैं। अब राज्य जाने में देर नहीं है, बालक राजा की जान खतरे में है, अब भी सँभलो; और राज्य की रक्षा करो।

यह सुनकर रानी ने पिता के पास जा सब बातों की हकीकत पूछी। सुनकर राव रणमल ने कहा—राज-काज की बातों में औरतों को दखल देने का कोई काम नहीं है, तुम जाकर घर बैठो।

रानी ने भी रोष से कहा—आप मेरे लड़के के राज में मन-मानी कर रहे हो।

इस पर बूढ़े रणमल बोले—हाँ तो करेंगे। राज हमारा और हमारे बाप का है, बेटियाँ रानी हो तो चुपचाप महल में पड़ी रहो वरना मोकल से भी हाथ धोओगी। यह सुन रानी तो लोहू की घूँट पीकर चुप-चाप चली आई। इधर रणमल ने उस पर पहरा बैठा दिया। और चूड़ाजी के भाई रघुदेव को धोखे से मरवा डाला। अब महारानी की आँखें खुलीं और बाप तथा भाई की करतूत समझी।

उसने धाय से सलाह कर चूडाजी को खत लिखा, और सब हकीकत बयान करके बहुत बहुत बिनती करके लिखा कि अपनी माँ की गलती का ख्याल न कर आकर पिता के राज्य और भाई के प्राणों की रक्षा करो। तुम वीर हो, वीर से याचना करने से कोई विमुख नहीं होता।

पत्र को अत्यन्त गोपनीय रीति पर पुरोहित के द्वारा चूडाजी के पास, मालवे भेज दिया गया। पत्र पढकर चूड़ाजी ने गुप्त सन्देश भेजा।

माता जी, हुआ सो हुआ। आप धीरज धारण करें तथा दान के बहाने आस-पास के गाँवों मे अपने विश्वास के आदमी भेजा कीजिये। परन्तु दिवाली के दिन मोकल को साथ लेकर गोमुण्डा अवश्य आना, वहाँ मैं मिलूँगा। इसके बाद सब काम ठीक कर लिया जायगा।

इसके बाद चूडाजी धीरे-धीरे अपने आदमी चित्तौड़ भेजने लगे। उनके भेजे हुए बहुत से भील छिपकर चित्तौड़ में रहने लगे। और कितने ही फौज और पुलिस मे भरती हो गये। उन्होंने बहुत से राजपूतों को लड़ने को तैयार कर लिया।

इधर रानी ने चूड़ाजी की बताई तरकीब काम मे ली। और दिवाली के दिन मोकल को लेकर गोमुण्डा मे चूड़ाजी से जा मिली। इसके बाद चूडाजी अपने आदमियों के साथ चित्तौड़ की ओर चले। फाटक पर पहरेदारों ने रोका तो उन्होंने कहा—हम महा-

राणा के आदमी हैं, उनके साथ बाहर गये थे, अब लौट रहे हैं। यह सुनकर पहरे वाले चुप रहे, सब लोग किले में घुस गये।

परन्तु रणमल जी को इन पर सन्देह हो गया और फौरन ही लड़ाई छिड़ गई। चूड़ाजी के आदमी ढूँढ़ ढूँढ़ कर मारवाड़ के आदमियों को मारने लगे। चूड़ाजी खुद वीरता से लड़े और कई घाव खाने पर उन्होंने किले के भाटी सरदार को मार कर किले पर अपना अधिकार कर लिया। जोधाजी रातों-रात चित्तौड़ से भाग खड़े हुए।

रणमल की एक प्रेमिका थी, वह उसके घर में अफीम के नशे में पड़े थे। मौका देख प्रेमिका ने उन्हीं की पगड़ी से उन्हें खाट से बाँध दिया, लड़ाई का होहल्ला सुनकर उन्हें होश आया और वे पलंग समेत उठ खड़े हुए। परन्तु एक राजपूत ने उनका वहीं काम तमाम कर दिया। इस प्रकार कुमार चूड़ाजी ने बालक राजा के प्राण और गद्दी की रक्षा की। आज भी उनकी सन्तान चूड़ावत कहाती हैं, और मेवाड़ के दरबार में उनका स्थान गद्दी की दाहिनी ओर है।

: ५ :

वीर बालक हकीकत राय

हकीकत राय का जन्म पञ्जाब प्रान्त के स्यालकोट नामी नगर में हुआ था। यह वह समय था जब भारतवर्ष का शासन सूत्र मुगलों के हाथ में था और शाहजहाँ राजगद्दी पर विराजमान थे। हकीकत राय अपने माता-पिता का एक मात्र पुत्र था। वह जाति का क्षत्रिय था। अभी यह छोटा ही था कि उसके पिता लाला बागमल ने उसे एक मस्जिद में पढने के लिये दाखिल करा दिया। उन दिनों संस्कृत की शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध न होने के कारण हकीकत राय को भी फारसी और उर्दू पढनी पड़ी। होनहार तो वह था ही, फारसी को भी वह बहुत जल्दी समझने लगा। यहाँ तक कि थोड़े ही दिनों में वह पुराने शिष्यों से भी बाजी ले गया। हकीकतराय को इस प्रकार सबसे आगे बढ़ते देखकर उसके सहपाठी उससे दिल-ही-दिल में जलने लगे!

एक दिन मौलवी साहब बालकों को कुछ पाठ याद करने के लिये देकर किसी जरूरी काम से बाहर चले गये। उन्हे गये अभी थोडी ही देर हुई थी कि बालकों ने शोर-गुल मचाना शुरू कर दिया। हकीकत राय इस शोर-गुल से अलग एक कोने में चुप-चाप बैठकर अपना पाठ याद कर रहा था। एक लड़का जो कि मुसलमान था, इस डर के मारे कि कही हकीकत पाठ याद करके सुना न दे उसके पास जाकर कहने लगा—क्यों रे, क्या सारे दिन

पढ़ता ही रहेगा ? बन्द कर किताब ! बड़ा पढ़ने वाला बना है। हकीकतराय किसी की बात में दखल नहीं देता था। और न यह चाहता था कि उसे कोई सताए।

उसने धीरे से कहा—देखो जी, फिजूल में झगड़ा मत करो नहीं तो दुर्गा भवानी की सौगन्द अच्छा न होगा।

भला एक हिन्दू बालक के मुँह से एक मुसलमान यह शब्द कब सुनने को तैयार था। उसने हकीकत का हाथ पकड़ कर कहा—तेरी दुर्गा भवानी की ऐसी-तैसी। बोल किताब रखता है कि नहीं। बड़ा देवी वाला बना है। देखूँ तेरी देवी क्या है और मेरा क्या बिगाड़ती है ? ऐसी देवियाँ रोज हमारी मस्जिद में झाड़ देती हैं।

हकीकत राय को यह बहुत बुरा लगा। झट अपने हाथ छुड़ाकर बोला—"यह अकड़ किसी और को दिखाना। जो बातें तुम मेरी देवी माता की शान में कह सकते हो, वह मैं भी तुम्हारी फातमा की शान में इस्तैमाल कर सकता हूँ।"

मस्जिद में तहलका सा मच गया। लड़के पहले ही हकीकत राय से द्वेष रखते थे। जब उन्होंने रसूलजादी की तौहीन सुनी तो उन्हें और भी गुस्सा चढ़ गया और वे जल भुनकर खाक हो गये।

एकाएक सब मिलकर हकीकत पर टूट पड़े। हकीकत राय बालकों के इस प्रकार के आकस्मिक आक्रमण से हैरान हो गया। बेचारा अकेला क्या करता ? चुप-चाप बैठ रहा। उसे पूरा विश्वास था कि मैं निर्दोषी हूँ, परन्तु वहाँ न्याय करने वाला कौन था। सभी

एक रंग मे रंगे हुए थे। हाँ, मौलवी साहब से कुछ आशा थी, परन्तु अभाग्यवश वे अभी तक नहीं आये थे। देखते ही-देखते बात का बतंगड़ हो गया। मौलवीसाहब वापिस आये तो लड़कों ने खूब नमक-मिर्च लगाकर सब बाते कह सुनाई और यह भी अंत मे कहा, कि हम लोगों के कहने पर उल्टे हम ही लोगों को मारने पर उतारू हो गया। यह बात सुनकर मौलवी से न रहा गया।

यवन-काल मे एक हिन्दू बालक की धृष्टता! उनके विचार में यह-अपराध अक्षम्य था। मौलवी साहब ने तुरन्त हकीकत को बुलाया। हकीकत बेचारा मार खाकर एक स्थान पर खड़ा हो मौलवी के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। जब उसने मौलवी साहब की कम्पित-वाणी सुनी तब उसे विश्वास हो गया कि लड़कों ने सब बाते मौलवी साहब से कह सुनाई हैं, इसी से मौलवी साहब क्रुद्ध हैं। वह समझता था कि लड़कों को पूरी-पूरी सजा मिलेगी। इन्हीं बातों को सोचता हुआ जा रहा था कि रास्ते मे ही मौलवी साहब मिल गये। मौलवी साहब ने आव देखा न ताव। लगे तड़ातड़ चाँटे लगाने। हकीकत की समझ मे नहीं आता था, यह क्या बात है। जब मौलवी साहब अपना बुखार उतार चुके तब उन्होंने हकीकत को एक कोठरी मे बन्द कर दिया, और पुलिस मे जाकर सारे मामले की इत्तला करदी। न्याय-अन्याय के आवरण मे छिप गया। निर्दोष बालक की फरियाद परमेश्वर के अतिरिक्त सुनने वाला कौन था।

हकीकत राय के पिता ने जब यह बातें सुनीं तो उनके होश उड़ गये। वह दौड़े-दौड़े मौलवी साहब के पास गये और अनुनय-विनय करने लगे। परन्तु मौलवी साहब ने एक न सुनी। उन्होंने कहा कि इसका फैसला अदालत में न होगा और तब तक हकीकत हवालात में ही रहेगा। हकीकत के पिता स्वप्न में भी मौलवी साहब से ऐसी आशा न रखते थे। वे मौलवी साहब की खातिर में कभी बाज नहीं आते थे और समय-समय पर मौलवी साहब की मुट्ठी भी गरम करते रहते थे। परन्तु इस समय सब निष्फल गया। जब उसने देखा कि अब सब बातें बेकार हो गये हैं। तब उन्होंने मौलवी साहब के सामने दस अशर्फियाँ रख दीं और पैरों पर सिर रख दिया। कोई दूसरा समय होता तो मौलवी इसके चतुर्थांश पर ही प्रसन्न हो जाते थे। परन्तु इनकी आँखों में मजहबी नशा छाया हुआ था। वे टस-से-मस न हुये। निराश हो लाला बागमल घर चले गये। दूसरे दिन मामले की पेशी हुई, सब के बयान लिये गये। आखिर काजी ने मौलवी साहब से जब इसकी सजा पूछी। तब मौलवी साहब ने कहा—शरअ में इसकी दो ही सजायें हैं "मुसलमान होना या प्राणदण्ड।" मौलवी के मुँह से यह सुन सब हैरान रह गये? इस छोटे से अपराध पर इतनी बड़ी सजा।

काजी ने हकीकत से कहा—लड़के! तेरा रोशन चेहरा देखकर मुझे तरस आता है, मगर शरअ के खिलाफ मैं कुछ भी नहीं कर सकता? हठ न कर, क्यों अपने घर का चिराग गुल करता है?

मुसलमान हो जा ? हकीकत के हृदय में इस समय एक अद्भुत बल का सञ्चार हो रहा था ? उसने कड़ककर जवाब दिया—मैं प्राणों के रहते अपने धर्म को कभी नहीं छोड़ सकता ? अगर आप को प्राण-दंड ही देना है तो खुशी से दे दीजिए। बालक की यह बात सुनकर लोग धन्य-धन्य कहने लगे। काजी की आँखों मे भी आंसू आ गये। उन्होंने मुकद्मा बड़ी अदालत मे भेज दिया। बड़ी अदालत से गवर्नर सूबा के पास मुकद्मा चला गया। वहाँ से तीन-दिन की मोहलत मिली।

अदालत में बड़ीभीड थी। लोगों का ताँता लगा हुआ था। परन्तु लोग चुप-चाप लाहौर की बडी अदालत की ओर बढ़े चले जा रहे थे। सबके चेहरे पर विषाद की कालिमा छाई हुई थी। जनता वीर हकीकत राय का अन्तिम फैसला सुनने के लिये बडी व्यग्र थी। जितने मुँह थे, उतनी ही बातें थीं। कोई कहता था आहा! कैसा सुंदर लड़का है! हँसता है तो मुँह से फूल झड़ते है, क्या हर्ज है अगरमुसलमानहोकरही यह रहे, जिन्दगी है तो सब कुछ है नहीं तो कुछ भी नहीं।

सब कर्मचारी अपने-अपनेस्थान पर बैठ गये। वीर हकीकत राय भीजंजीरोंसेजकड़ा हुआ लाया गया। उसके चेहरे पर अपूर्व लावण्य था। वह वीरों की नाँई अचल खड़ा था। जिसने देखा उसी का मस्तक भक्ति से नत हो गया। सहसा हकीकत के माता-पिता ने आकर कहा—बेटा अपने बूढे माता-पिता पर दया करो।

मुसलमान धर्म ग्रहण करलो। हम तुम्हारी सूरत देखकर जीते हैं। तुम्हारी ज़िन्दगी किसी न किसी तरह रहे, हमारे लिये यही बहुत है। हकीकतराय ने जवाब में कहा—यदि इस बात का मुझे कोई विश्वास दिलादे कि अपना धर्म छोड़ने से मैं सदा के लिये मृत्यु से छुटकारा पा जाऊँगा तो मैं सहर्ष मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लूँगा। जब एक बार मरना है तो जैसे आज मरा वैसे कल। फिर अपने धर्म को क्यों छोड़ूँ? हरेक के भाग्य में ऐसी मृत्यु नहीं होती।

सब चुप होगये। मुसलमान न होने का दंड मौत हो सकता था, उसी समय नवाब साहब भी आ गये, और उन्होंने हकीकत रायकोबहुतसमझाया कि वह मुसलमान हो जाए। पर हकीकत ने उन्हें भी वही जवाब दिया।

मौलवी और काज़ीशुभकाम में देर न किया चाहते थे। इस लिए उन्होंने नवाबसाहब कोजल्दी फैसला सुनाने को वाध्य किया, अन्त में नवाब ने मौत का फैसला सुना दिया, जो सबने कलेजा थाम कर सुना। सब के दिल बैठ गये और सिर झुक गये। रात भर वह अन्धेरी कोठरीमेंबन्द रहा, और उसके माता पिता दीवारों में टक्करें मारते रहे। प्रातःकाल जल्लाद ने उसका सिर काट लिया उसकी लाश, उसके माता पिता को जलाने को देदी। उसके माता पिता सब घर-बार लुटाकर फकीर होगये और घूमते फिरते दिल्ली आ पहुँचे। एक दिन बादशाह शाहजहाँ सोया हुआ था, कि हकीकतराय की आत्मा ने स्वप्नमेंसबबातें बादशाह को कह दीं।

दूसरे दिन बादशाह जब उठा तो बहुत उदास था और सोच ही रहा था कि मेरे राज्य में ऐसे अत्याचार होते हैं कि नीचे से किसी ने दुहाई दी। यह हकीकत राय के माता पिता थे। बादशाह ने उन्हें ऊपर बुलाया और सब बात पूछीं। उन्होंने सब बात कह सुनाई। बादशाह के स्वप्न की तसल्ली इस प्रकार हो गई तो उसे यकीन आ गया। उसने एकाएक लाहौर जाने की तैयारी कराई। जब लाहौर पहुँचे तो नवाब ने जो गवर्नर सूबा था, उसे सब बात सुनाई। बादशाह ने इनाम के बहाने सब काजियों, मौलवियों और उनके सब कुटुम्बियों को इनाम देने के लिए स्यालकोट से लाहौर बुलाया। रावी नदी के दूसरी ओर खेमे लग गये, नदी चढ़ाव पर थी। जब सब काजी वगैरा आ गये तो बादशाह ने मल्लाहों को कह दिया कि इन्हें नदी में डुबो देना। उन्होंने नदी पार करते वक्त सब को डुबो दिया। बादशाह ने नवाब को भी मरवा दिया। दूसरे दिन एक आम दरबार हुआ, उसमें बादशाह ने हकीकतराय के माता-पिता को बहुत धन दिया। और एक और पुत्र के लिए परमात्मा से सबने प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार हुई। बादशाह ने हकीकत राय की दो समाधियाँ एक लाहौर में और दूसरी स्यालकोट में अपने व्यय से बनवाईं। और हकीकत के माता पिता को बहुत तसल्ली वगैरा दी और बहुत धन देकर घर वापिस भेज दिया।

कहते हैं लाला बागमल के घर एक और बालक हुआ। जिसकी सन्तान आजकल नजर आ रही है।

: ६ :

अभिमन्यु

पाण्डवों के शिविर में बड़ी चिन्ता फैली हुई है। अर्जुन और कृष्ण कौरवों की सेना के व्यूह में घुसकर दूर तक चले गये थे, उनका लौटना सम्भव न था, इधर द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की थी, जिसमें प्रविष्ट होना और निकलना कोई नहीं जानता था, यही सब वीरों की चिन्ता का विषय था। सब अपनी-अपनी कह रहे थे।

भीम ने खम ठोंक कर कहा—"कोई चिन्ता नहीं, मैं अपने बाहुबल से इस व्यूह को छिन्न-भिन्न कर दूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—नहीं भाई, यह संभव नहीं है, जब तक तुम व्यूह भेदन करने की विद्या नहीं जानते तब तक मैं तुम्हें यह साहस न करने दूँगा।

"परन्तु क्या हम शत्रु के भय से घर में बैठ रहेंगे?

यह ठीक है पर हम व्यूह में फँस कर मरना भी नहीं चाहते। हाय, अर्जुन के न होने से हम इस दुर्दशा में फँस गये। आचार्य को भी संधि मिल गई। यह हमारे सर्वनाश का उपाय है। देखते नहीं, कौरव कैसा कोलाहल कर रहे हैं।

अभिमन्यु—आप मुझे व्यूह में जाने दीजिये, पर मैं भीतर जाने की विधि जानता हूँ—बाहर निकलने की नहीं।

युधिष्ठिर—नही पुत्र, तुम अकेले ७ महारथियों से युद्ध न कर सकोगे।

अभिमन्यु—महाराज, मै आपको दिखा दूँगा कि मै आपका सच्चा पुत्र हूँ। आप मेरी कम अवस्था पर विचार न करे।

युधिष्ठिर—नही पुत्र; हम तुम्हे जलती आग मे कैसे झोंक सकते है, कुछ स्याह-सफेद हो गया तो अर्जुन को क्या जवाब देंगे।

अभिमन्यु—आप चिन्ता न करे, मै व्यूह मे घुसना जानता हूँ। पीछे उसे छिन्न-भिन्न करके निकल आऊँगा।

युधिष्ठिर—क्या तुम चक्रव्यूह मे घुसना जानते हो?

अभिमन्यु—हाँ महाराज, मैने माता के गर्भ ही मे यह विद्या सीख ली थी, एक बार जब मै गर्भ मे था पिता जी माताजी को व्यूह रचना का भेद बताने लगे। पर बाहर निकलने का भेद माता न जान सकीं, वे सो गईं। अतः मैं भी उसे न जान सका।

युधिष्ठिर—खैर, यदि तुम व्यूह मे चले भी गये, तो लौटना कठिन है। नहीं, मै तुम्हे जोखिम के काम मे नहीं जाने दूँगा, कभी नहीं।

अभिमन्यु—महाराज, मैं क्षत्रिय पुत्र हूँ, आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, मै आज शत्रु के दाँत खट्टे करूँगा।

युधिष्ठिर—पर मुझे तुम्हारे लौटने में सन्देह है।

भीम—आप इसकी चिन्ता न करे। अभिमन्यु के पीछे-पीछे हम भी व्यूह मे घुस जावेगे और वहाँ से अपनी भुजाओं के बल

पर निकल आयेंगे ।

युधिष्ठिर—देखता हूँ दूसरा उपाय नहीं है, अन्यथा ऐसा भी हो, पर भीम, सावधान रहना ।

भीम—(छाती ठोक कर) आप निश्चिन्त रहें ।

(सब युद्ध का साज सजाते हैं । अभिमन्यु उत्साह से विदा हो युद्ध को जाता है ।)

*

“अभी तक अभिमन्यु नहीं लौटा, सन्ध्या हो रही है ।”

“कौरव सेना में बड़ा कोलाहल हो रहा है गरुड़ध्वज नहीं दीख रहा ।”

“वह सामने का पर्वत उड़ता नजर आ रहा है, वह भीम की पताका है, भीम आ रहा है ।”

“पर गरुड़ध्वज कहाँ है ? अभिमन्यु कहाँ है ?”

“ठहरिए, भीम शिविर में आ पहुँचे ।”

(व्याकुल भीम आते हैं ।)

युधिष्ठिर—भाई भीम, पुत्र अभिमन्यु कहाँ है ?

भीम—कुछ पता नहीं चलता, हम लोग उसका अनुगमन नहीं कर सके ।

युधिष्ठिर—तब क्या वह अकेला व्यूह में घुस गया ?

भीम—जी हाँ, हम अनुगमन न कर सके, आचार्य की तीव्र दृष्टि में हम पिस गये ।

युधिष्ठिर—सुनो-सुनो कौरव सेना हर्षनाद कर रही है। क्या हुआ ?

भीम—कह नही सकते।

युधिष्ठिर—वह कौन आ रहा।

(एक घायल योद्धा आकर गिर पड़ता है।)

भीम—कौन हो तुम ?

योद्धा—अभय महाराज। अभय—

युधिष्ठिर—पुत्र अभिमन्यु कुशल से हैं, कहो।

योद्धा—महाराज...

भीम—कहो-कहो, पुत्र अभिमन्यु—

योद्धा—दुहाई महाराज की, उन्हे आठ महारथियो ने मिल कर निःशस्त्र हनन कर दिया।

युधिष्ठिर—(उठकर) निःशस्त्र हनन कर दिया ? किसने यह कुकर्म किया ?

योद्धा—आठ महारथियो ने महाराज, जयद्रथ पापी ने नि.शस्त्र वीर की गर्दन पर वार किया।

भीम—अभागा जयद्रथ।

(पाण्डव सेना में हर्षनाद होता है।)

युधिष्ठिर—अरे ! यह शोक समाचार के अवसर पर हर्षनाद कैसा ? इसे बन्द करो।

भीम—महाराज अर्जुन युद्धजीत कर आ रहे है। वह पँच-

जल्द शान्त हो और सुनिए।

युधिष्ठिर—हाय कैसे मैं अर्जुन को मुँह दिखाऊँगा।

(अर्जुन आते हैं।)

अर्जुन—महाराज, आपके पुण्य प्रताप से शत्रु पर हमारी विजय हुई, पर यह शिविर में कैसा सन्नाटा है, बाजे नहीं बज रहे, सैनिक चुप बैठे हैं, जयजयकार नहीं हो रहा।

युधिष्ठिर—आओ भाई, शान्त हो—अपराधी मैं हूँ।

अर्जुन—हुआ क्या है महाराज? अभिमन्यु कहाँ है।

युधिष्ठिर—अभी सब मालूम हो जायगा। तुम जरा शान्त हो।

अर्जुन—आपकी वाणी काँप रही है। आपकी आँखों से आँसुओं की धार बह रही है। महाराज, कहिये मेरा अभिमन्यु कुशल से तो है? भाई आपके मुख पीले क्यों हैं, कहिये, अभिमन्यु कहाँ है?

युधिष्ठिर—अरे भाई, वीर पुत्र वीर गति को प्राप्त हुआ।

अर्जुन—क्या कहा? अभिमन्यु वीर गति को प्राप्त हुआ, अभी उसकी आयु क्या थी, उसे युद्ध में भेजा किसने?

युधिष्ठिर—मुझ पापी ने—अब तुम मेरा वध करो।

अर्जुन—महाराज।

(मूर्छित हो जाते हैं।)

युधिष्ठिर—अरे भाई, अर्जुन की रक्षा करो।

भीम—शोक से उनकी छाती फट जायेगी।

अर्जुन—(होश मे आकर) हाय मेरा पुत्र इस कराल युद्ध की भेट हो गया। अब मै उसका मुखडा न देख सकूँगा, उसकी मुस्कराहट, उसका विनोद ! मै उत्तरा को कैसे मुँह दिखाऊँगा।

(श्रीकृष्ण आते हैं।)

श्रीकृष्ण—अर्जुन शान्त हो।

अर्जुन—महाराज, शान्ति कैसी।

श्रीकृष्ण—अभिमन्यु अमर हुआ, उसने कौरवों की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसे जयद्रथ ने छल से मारा है। इस शत्रु से बदला लो।

अर्जुन—मैं अर्जुन प्रतिज्ञा करता हूँ, कि यदि जयद्रथ को कल सूर्यास्त से पहिले ही न मार डालूँ तो गाडीव सहित जलकर चिता पर भस्म हो जाऊँगा।

श्रीकृष्ण—अर्जुन, यह कैसी प्रतिज्ञा।

अर्जुन—प्रतिज्ञा हो चुकी महाराज, प्रतिज्ञा पालन न करूँ तो मैं अर्जुन नहीं।

श्रीकृष्ण—तुम अर्जुन हो; अर्जुन ही रहोगे। उठो-अब पुत्र की ऊर्ध्व क्रिया करें।

सब—हाय पुत्र, हाय अभिमन्यु। (जाते हैं।)

७ :

उपमन्यु

बहुत पुराने ज़माने की बात है, उन दिनों न आज के से शहर थे न बड़ी आलीशान यूनिवर्सिटियाँ। विद्वान ऋषिगण वनों में रहते और छात्र गण उन्हीं के आश्रम में रह कर विद्योपार्जन करते थे। वे न फीस लेते थे, न उस ज़माने के विद्यार्थी—टाई, कालर, कोट, पैन्ट, बूटों में लैस रहना सीखे थे, इसी से उनके शिष्य विद्यामृत पान कर अमर हो जाते थे।

ऋषि धौम्य बड़े भारी महात्मा थे। उनके एक शिष्य का नाम उपमन्यु था। एक दिन ऋषि ने शिष्य से कहा—बेटा उपमन्यु मैं तुम्हें अपनी गाय चराने का काम सौंपता हूँ तुम वन में उनकी देख-भाल रखना।

उपमन्यु ने गुरु जी की आज्ञा शिरोधार्य की और वह गायों को चराने लगा। सारे दिन गायों को चरा कर वह शाम को आश्रम में आता, और गुरु जी को प्रणाम कर उनके सामने खड़ा हो जाता। इस तरह करते-करते कई वर्ष बीत गये।

एक दिन ऋषि ने पूछा—क्यों बेटा उपमन्यु, तुम तो खूब मोटे हो रहे हो, कहो, क्या खाते पीते हो?

उपमन्यु ने कहा—महाराज मैं गाँवों से भिक्षा माँग लाता हूँ।

गुरु जी ने कहा—"यह क्या करते हो। भिक्षा माँग कर जो

लाते हो, उसे बिना हमें दिखाये ही खा जाते हो ! यह ठीक नहीं है, जो भिक्षा लाओ, हमारे सामने उपस्थित करो।

उपमन्यु ने कहा—बहुत अच्छा गुरुजी।

इसके बाद वह भिक्षा लाकर गुरुजी के सामने रख देता और वे उसमें से कुछ भी नहीं देते थे।

उपमन्यु अब भी खुश रहने लगा। कुछ दिन बाद उसे खूब मोटा-ताजा देखकर गुरुजी ने पूछा—अरे पुत्र उपमन्यु, अब तुम क्या खाते हो ? जो भिक्षा माँग कर तुम लाते हो वह तो मैं रख लेता हूँ।

उपमन्यु ने कहा—महाराज, मैं फिर भिक्षा माँग लाता हूँ। उसी से मेरा काम चल जाता है।

गुरुजीने कहा—वाह, यह तो महा अधर्म है। इससे दूसरोंकी भिक्षा मे कमी पड़ेगी। तुम्हे ऐसा काम हर्गिज नहीं करना चाहिए।

उपमन्यु ने स्वीकार किया और चला गया। थोड़े दिन बाद इसे खूब मोटा-ताजा देखकर ऋषि ने कहा—पुत्र, तू अपनी भिक्षा तो सब मुझे दे देता है और दुबारा भी माँगने नहीं जाता—फिर तू अब क्या खाता है जो ऐसा मोटा ताजा बना हुआ है।

उपमन्यु ने कहा—महाराज, आजकल मैं गायों का दूध पी लेता हूँ।

महर्षि ने कहा—राम-राम, तुम यह क्या करते हो ? बिना मेरी आज्ञा के मेरी गायों का दूध कैसे पी लेते हो ?

उपमन्यु ने कहा—महाराज अब मैं गायों का दूध न पीऊँगा।
उपमन्यु अब दिन भर गायें चराता और शाम को गुरुजी के सामने आ खड़ा होता। जब इस तरह कुछ दिन हो गए तो गुरुजी ने फिर उससे पूछा—अरे पुत्र तू न तो भिक्षा अपने लिये लाता है और न गाय का दूध ही पीता है, अब तू क्या खाता है, जो ऐसा ही मोटा बना हुआ है?

उपमन्यु ने कहा—बछड़ों के मुँह से जो झाग गिरता है, मैं वही खा लेता हूँ।

ऋषि ने कहा—हरे-हरे बेटा ऐसा फिर कभी न करना, बछड़े जब तुम्हें फेन खाता देखेंगे तो ज्यादा फेन गिरायेंगे इससे वे भूखे रहेंगे।

उपमन्यु ने हाथ जोड़ कर कहा—अच्छा महाराज, अब मैं फेन भी न खाऊँगा।

और कुछ दिन वह गायें चराता रहा। एक दिन शाम को वह यथा-नियम गुरुजी के सामने नहीं आया गुरुजी ने शिष्यों से पूछा—अरे आज उपमन्यु कहाँ है? उसका सब खाना-पीना बन्द कर दिया है कहीं इस से नाराज होकर तो इधर-उधर नहीं चल दिया? चलकर देखें तो कि वह कहाँ है। यह कहकर गुरुजी अपने सब शिष्यों को लेकर वन में उपमन्यु को ढूंढने निकले। वन में जाकर ऋषि ने उपमन्यु का नाम ले लेकर पुकारना शुरू किया। बात यह हुई थी कि उपमन्यु ने और कुछ उपाय न देख

आक के पत्ते खा-खा कर पेट की ज्वाला बुझाई थी इस से वह अन्धा हो गया था और कुएँ में गिर गया था।

गुरुजी की आवाज सुनकर उपमन्यु ने कुएँ के भीतर चिल्ला कर कहा—भगवन्, मै कुए मे गिर गया हूँ।

"अरे पुत्र, तुम कुएँ मे कैसे गिर गये ?

"आक के पत्ते खाने से मै अंधा हो गया हूँ इसलिए मैं कुएँ में गिर गया।

गुरुजी ने कहा—अच्छा, तू अश्वनी कुमारो की स्तुति कर तेरी आंखे अच्छी हो जायेगी। उपमन्यु ने ऐसा ही किया।

अश्वनी कुमारो ने प्रसन्न होकर कहा—हम तेरी स्तुति से बहुत प्रसन्न है। ले यह हविष्य खा।

उपमन्यु ने उन्हे प्रणाम करके कहा—मै आपकी बात तो नहीं टाल सकता, पर पहले गुरु जी को अर्पण किये बिना मैं कुछ नहीं खा सकता। इस पर अश्वनी कुमारों ने कहा—तेरी गुरु-भक्ति धन्य है, आखे अच्छी हो जायेंगी और तेरा कल्याण भी हो जायगा।

बस उपमन्यु की आँखे अच्छी हो गई। और उसने बड़ी भक्ति से अश्वनी कुमारों को धन्यवाद दिया। उसके बाद गुरुजी ने बड़े प्रेम और यत्न से उसे सब विद्याओं मे पारगत कर दिया।

पितृभक्त श्रवण

बूढ़े-बुढ़िया दोनों अंधे थे। पर थे बड़े चतुर और चालाक। और पुत्र था पिता-माता का परम भक्त। पुत्र ने अपनी बहू को आज्ञा दे रखी थी कि पिता-माता की भली भांति सेवा करे, परन्तु वह अपने लिये और पति के लिये उत्तम भोजन बनाती और अन्धे सास, ससुर को खराब खाना खिलाती थी। पितृ-भक्त श्रवण माता पिता के साथ बैठकर भोजन करता था पर उसकी स्त्री ने यह चालाकी की कि हांडी के बीच में पर्दा लगा रखा था, आधी में खीर बनाती और आधी में दाल की महेरी बनाती, श्रवण को कुछ पता न चलता कि एक ही प्रकार हांडी में दो प्रकार का भोजन बन रहा है। एक दिन श्रवण ने अपनी थाली माता-पिता के आगे धर दी। अन्धे बूढ़े ने जो खीर खाई तो प्रसन्नता से चीख उठा—बोला वाह, पुत्र आज बहुत दिन बाद खीर खाई।

श्रवण ने कहा—यह क्यों पिता जी! खीर तो आप रोज ही खाते हैं। इस पर बूढ़े ने कहा—अरे पुत्र, छाछ की महेरी को खीर कहते हैं। इस पर श्रवण को बड़ा आश्चर्य हुआ पर जब उसने दो पेट की हांडी देखी तो सब भेद समझ गया। जब उसे पता लगा कि उसके माता-पिता के साथ उसकी स्त्री ने अन्याय किया है तो उसे बहुत दुख हुआ।

तब से उसने माता-पिता की सेवा का भार अपने ऊपर ले

लिया वह उनकी सारी सेवा-टहल स्वयं करता। अपने आप पानी भर कर उन्हे नहलाता, कपड़े पहनाता, धोता और भोजन बना कर खिलाता था।

एक बार उसके माता-पिता ने तीर्थ-यात्रा की इच्छा की। उन दिनों तीर्थ-यात्रा इतनी सुलभ न थी जितनी अब है। न रेल थी, और न पक्की सड़के, सैकड़ों कोस तक बन-ही-बन थे। श्रवण एक बहेंगी बना, माता-पिता को उसमे बैठाकर तीर्थ-यात्रा को ले चला। वह दिनभर उन्हे लेकर चलता और रात को सेवा करता। इस प्रकार कई वर्ष घूम फिर कर बहुत से तीर्थों की उसने यात्रा की।

एक दिन श्रवण और उसके माता पिता एक बन मे ठहरे थे। उन्हे प्यास लगी, उन्होंने श्रवण को नदी से जल लाने को कहा। श्रवण घडा लेकर नदी मे जल भरने चला। नदी कुछ दूर थी, दैवयोग से अयोध्या के राजा दशरथ उस समय शिकार खेलते उधर से आ निकले। वे शब्द बेधी बाण चलाने में बड़े चतुर थे। श्रवण ने जब घड़े मे जल भरा तो उसमे से शब्द हुआ— राजा ने समझा नदी तीर पर कोई जंगली जीव पानी पी रहा है। उन्होंने ताक कर तीर मारा। निशाना अचूक था, वह श्रवण की छाती के पार हो गया। श्रवण वही गिर कर कराहने लगा।

राजा ने आकर देखा, सुन्दर युवक वेदना से कराह रहा है। और उसकी छाती से खून की धार बह रही है, राजा को बहुत पछतावा हुआ, उसने उसकी छाती से तीर निकाला और उसका

परिचय पूछा ।

श्रवण ने कहा—यहीं वृक्ष के नीचे मेरे माता-पिता हैं वे अन्धे हैं और प्यासे हैं, तुम उन्हें जल दे आओ। इतना कहते कहते श्रवण ने प्राण त्याग दिये ।

राजा पानी का घड़ा लेकर अन्धे बूढ़े-बुढ़िया के पास गया । पानी रखकर चुपचाप खड़ा हो गया । बूढ़े ने पुत्र को पुकारा, पर न बोलने पर उन्हें आश्चर्य हुआ ।

अन्त में राजा ने अपना परिचय दिया और सारी कथा कह सुनाई । पुत्र का मरना सुनकर दोनों अन्धे फूट-फूट कर रोने लगे । अत्यन्त दुखी होकर उन्होंने राजा को पुत्र की चिता बनाने की आज्ञा दी । राजा ने अत्यन्त दुखी होकर चिता बनाई और दोनों बूढ़े-बुढ़िया पुत्र की लाश गोद में लेकर जल मरे । मरते वक्त उन्होंने दशरथ को शाप दिया कि जैसे हम पुत्र वियोग में मरते हैं, उसी तरह तुम भी मरोगे ।

समय बीतता चला गया । दशरथ बूढ़े के शाप को भूला नहीं । अन्त में पुत्र के वियोग में ही उनके भी प्राण गये ।

: ६ :

प्रह्लाद

प्रह्लाद का नाम हिन्दुओं मे घर-घर विख्यात है। उसका जन्म एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित वंश मे हुआ था। महर्षि कश्यप के सत्रह स्त्रियाँ थी सबसे बड़ी का नाम 'दिति' था। दिति के गर्भ से उनके दो महा पराक्रमी पुत्र हुए। उनका नाम हिरण्य कश्यप और हिरण्याक्ष रखा गया। दिति के पुत्र होने के कारण उनका नाम दैत्य पड़ गया। पीछे अपने अमानुषिक कर्मों के कारण दैत्य नाम बुरे अर्थों मे माना जाने लगा। इन्ही के वंशज दैत्य कहलाये। प्रह्लाद हिरण्य कश्यप के पुत्र थे। इनकी माता का नाम कयाधु था, प्रह्लाद पाँच भाई थे जिनमें प्रह्लाद तीसरे थे। इनकी एक बहिन भी थी जिसका नाम सिंहिका था।

हिरण्य कश्यप बडा था और हिरण्याक्ष छोटा। हिरण्य कश्यप राज्य को देखता था हिरण्याक्ष योंही घूमता फिरता, लोगों को सताता था। उससे सब लोग भयभीत रहते थे। हिरण्याक्ष बड़ा वीर, साहसी और विजयी था—उसने बड़े-बड़े देश अपने बाहुबल से जीतकर अपना शासन जमा लिया। अन्त मे वराह अवतार हुआ। और हिरण्याक्ष मार डाला गया। जिससे सब लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई। परन्तु इससे हिरण्यकश्यप को बहुत क्रोध आया और उसने सत्पुरुषों को सताना आरम्भ कर दिया। भाई के मरने का उसे अत्यन्त दुःख हुआ। वह रात-

दिन बेचैन रहने लगा, एक बार उसकी रानी ने शयनागार में आकर देखा कि राजा बेचैन होकर करवटें बदल रहे हैं, तो उसने कहा—महाराज सब सारा संसार आनन्द मनाता सो रहा है आप जैसे महाप्रतापी को ऐसी क्या दुखदाई चिन्ता है जिससे आप ऐसे बेचैन हो रहे हैं।

हिरण्यकश्यप ने कहा—उन पापी देवताओं ने मेरे भाई हिरण्याक्ष को मारा है, तब से देवताओं की ताकत बढ़ गई है और हमारे दैत्य कुल की बड़ी अप्रतिष्ठा हुई है। देवताओं की शक्ति बढ़ती ही जाती है। मैं चाहता हूँ कि सारे देवताओं को नष्ट कर दूँ। रानी ने कहा—इसमें इतनी चिन्ता करने की क्या बात है? बेचारे देवताओं की क्या हैसियत है जो आपके तेज और प्रताप के सामने ठहर सकें। आप मन के दुःख को त्याग कर वीर की भाँति युद्ध की तैयारियाँ कीजिये।

हिरण्यकश्यप ने कहा—तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु मुझे विष्णु का बड़ा डर है, उसी ने छल करके मेरे भाई को मारा है, और देवताओं को उसका बड़ा भारी सहारा है, उस से मुकाबला करने की मेरी शक्ति नहीं है। इसलिये मैंने एक बात सोची है। वह यह कि मैं तप करके शिवजी से वरदान प्राप्त करूँ। तब निर्भय होकर इन देवताओं से युद्ध करूँ। इसी में दैत्य कुल का लाभ है।

रानी ने कहा—आप सब नीति के ज्ञाता और बुद्धिमान हैं। आप को मैं क्या सम्मति दे सकती हूँ। आप जो ठीक समझें करिये। जब देवताओं ने विष्णु का सहारा लिया है तब आपको

भी शिवजी का सहारा लेना चाहिये।

इस तरह रानी से सलाह करके हिरण्यकश्यप आराम की नींद सोया। दूसरे दिन मंत्री और पुत्र को राज-पाट सौंप कर कैलाश पर्वत पर तपस्या करने को चला गया। जिस समय वह तपस्या करने जा रहा था उस समय रानी गर्भवती थी। उसने अपने गुरू शुक्राचार्य को बुलाकर कहा—कि आप गर्भस्थ शिशु के सब संस्कार यथा विधि कराइये। मैं कैलाश पर्वत पर तपस्या करने जा रहा हूँ।

जब देवताओं को इस बातका पता लगा तो वह बड़े घबराये। देवराज इन्द्रने हिरण्यकश्यप की राजधानी हिरण्यपुर पर धावा बोल दिया। सारे शहर को लूट-पीट कर उजाड दिया। सेना-पतियों और राजकुमारों को कैद कर लिया। बहुत से दैत्य मारे गये। और बहुत से जङ्गलों मे छिप गये। दैत्यों की बहुत सी सम्पति देवता लूट कर ले गये।

हिरण्यकश्यप की रानी को भी पकड़कर ले गये थे। पर नारद ने कहकर उसे छुड़ा लिया और वह कह-सुनकर उसे अपने आश्रम मे ले आये। वहां पर नारद जी के उपदेशों से उनकी भगवान् में भक्ति हो गई, उसका प्रभाव उसके गर्भ के बच्चे पर भी पडा।

उधर हिरण्यकश्यप ने वन मे घोर तपस्या की, उससे प्रसन्न होकर शिवजी ने दर्शन दिये और कहा—कि वर मांग। हिरण्य

कश्यप ने कहा—कि महाराज, मुझे यह वर दीजिये कि मुझे कोई आदमी न मार सके। मेरी मृत्यु न घर में हो, न बाहर हो, न धरती में हो, न आसमान में हो, न दिन में न रात में, शिवजी ने हँसकर कहा,—अच्छा ऐसा ही होगा। दैत्य राजा जब वर प्राप्त कर अपनी राजधानी को लौटा तो उसने देखा राजधानी उजाड़ और सूनी पड़ी है और राजमहल में भी सन्नाटा है। जब उसने इन्द्र के अत्याचारों की कहानी सुनी तो वह क्रोध से थर-थर काँपने लगा। देवताओं ने जब वर प्राप्ति की बात सुनी तो बड़े घबराये और विष्णु भगवान् के पास गये। और कहा—कि महाराज अब क्या करना होगा।

विष्णु भगवान ने उनको तसल्ली दी और कहा—तुम डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। इन्द्र ने दैत्यों और राजकुमारों को डर के मारे छोड़ दिया। नारद जी भी उनकी गर्भवती रानी को हिरण्यकश्यप के पास छोड़ आए। पुत्र, मन्त्रियों और रानी को पाकर उसने फिर से हिरण्यपुर बसाया। थोड़े दिनों में फिर हिरण्य पुर पहले की तरह वैभव और समृद्धि का केन्द्र हो गया।

थोड़े दिन बाद रानी के गर्भ से प्रह्लाद का जन्म हुआ। बालक के पैदा होते ही बाजे बजने लगे और बधाइयाँ गाई जाने लगीं। गरीबों और अपाहिजों को अन्न और वस्त्र बांटा जाने लगा। राज-धानी भर में उत्सव हो उठा। दैत्यराज भी परम प्रसन्न हुआ। बालक धीरे-धीरे बड़ा हुआ। दैत्यगुरू शुक्राचार्य ने उसके संस्कार

कराए। और उसका नाम प्रह्लाद रखा—क्योंकि उसे देखकर सभी प्रसन्न होते थे।

प्रह्लाद अत्यन्त रूपवान, बुद्धिमान और धर्मात्मा बालक था। वह चुप-चाप एकान्त मे बैठा कुछ सोचा करता था। धीरे-धीरे उसे विद्याभ्यास कराया गया। वह अति मेधावी था और जो पाठ गुरू जी पढाते थे। झट सीख लेता था।

एक दिन वह पाठशाला से बालकों के साथ आ रहा था। रास्ते मे देखा कि एक कुम्हारी अपने घर से बाहर बैठी रो रही है और भगवान को पुकार रही है। उसके घरके आँगन मे आवा जल रहा है। बालक प्रह्लाद ने करुणा करके पूछा—कुम्हारी तू क्यों रो रही है।

कुम्हारी ने कहा बेटा मेरा मन बड़ा दुखी है तुम से क्या कहूँ मेरे घर मे बिल्ली ने दो बच्चे दिये थे। सर्दी से उन्हे बचाने के ख्याल से मैंने उन्हे एक घडे मे रख दिया—मै तो बाहर गई थी—मेरे कुम्हार ने वह घड़ा भी पकाने को आग मे रख दिया—अब बेचारे बच्चो को भगवान ही बचा सकता है इतना कह कर वह फिर रोने और भगवान को पुकारने लगी।

प्रह्लाद ने कहा—भगवान कैसे अब बच्चों को बचा सकते हैं? बच्चे तो आग मे जल भुन गये होंगे।

कुम्हारी ने कहा—पुत्र भगवान आग मे भी रहते है पर नहीं जलते, आग भी उन्हीं की बनाई है। वे चाहे तो बच्चे बच सकते

है। उनकी शक्ति अपार है इसी से मैं उन्हें पुकार रही हूँ। अगर बच्चे मर गये तो मुझे ही पाप लगेगा।

प्रह्लाद ने कहा—अच्छा कल मैं आकर देखूँगा कि तेरे भगवान ने बच्चों को बचाया या नहीं।

२

दूसरे दिन कुम्हारी के घर प्रह्लाद ने आकर देखा तो छोटे-छोटे बच्चे कुम्हारी की गोद में बैठे पूँछ हिला-हिला कर दूध पी रहे हैं। प्रह्लाद ने कहा—यही वे बच्चे हैं?

"हाँ"

"कैसे बचे?"

"भगवान् ने बचाये।"

"आग में जले नहीं?"

"जिधर बच्चे थे, उस ओर के सारे घड़े कच्चे रह गये, वहाँ तक आँच पहुँची ही नहीं।"

प्रह्लाद सोच में पड़ गये। उन्होंने फिर कुम्हारी से कहा—तूने कभी देखा है भगवान् को?

"नहीं बेटा, भगवान् कहीं दीखते थोड़े ही हैं, वे तो घट-घट में बसते हैं, उनका ध्यान करने से ही वे मनकी इच्छा पूर्ण करते हैं।

प्रह्लाद ने उत्सुकता से कहा—"तूने किया था उनका ध्यान।"

"मैंने कई बार रो-रो कर उनसे प्रार्थना की थी।"

"प्रार्थना उन्होंने सुनी?"

'सुनकर ही तो बच्चों को बचाया, देखो कैसे प्यारे बच्चे है।"

प्रह्लाद बच्चों से खेलने लगा, और भगवान् का ध्यान करने लगा?

घर लौट कर वह एकान्त मे बैठ कर सोच रहा था—यह भगवान् कौन है? कहाँ रहते है? इन से मिलना चाहिये।

उसकी माता ने कहा—अरे पुत्र! तुम यहाँ अकेले बैठे क्या सोच रहे हो?

मैं भगवान् की बात सोच रहा हूँ माँ!

नही बेटे, ऐसा कभी मत कहना, भगवान् तेरे पिता के शत्रु है जो कोई भगवान् का नाम लेता है, वे उसी का सिर काट लेते हैं?

पिता जी ऐसा क्यों करते है मा? भगवान् तो बड़े दयालु हैं, उन्होंने कुम्हारी के बिल्ली के बच्चों की जान बचा ली।

पागल कहीं का। भगवान् देवताओं के साथी है, उन्हीं की मदद से तो देवताओं ने हमे इतने दुःख दिये है, तुम्हारे पिता के राज्य मे उन्हीं की दोहाई बोली जाती है, उन्ही के नाम का डका बजता

तो क्या पिता जी ही इस दुनिया के कर्ता-धर्ता है?

वे पृथ्वी के राजा है?

वे जलते कुम्हार के अवा मे से बिल्ली के बच्चों को जिन्दा बचा सकते है?

अरे, उनके प्रभाव के सामने बडे बड़े देवता थर-थर कापते है?

प्रह्लाद चुप हो गया, फिर उसने कहा—मां, मैं तो भगवान्

की रक्षा करता है, वे बड़े दयालु हैं, तो तुम भी तो उनका ध्यान किया करो; वे किसी से डरते नहीं हैं, परन्तु सभी उनका ध्यान करने से सब मनोकामना पूरी कर देते हैं।

बालक प्रह्लाद की इन बातों से रानी के मन में डर—ऐसी ही बातें नारद जी कहा करते थे; इसके पिता सुनेंगे तो आफत मचा देंगे। प्रकट में कहा—अच्छा, चल अब कुछ खा पी और आराम कर। माँ की प्रेम-भरी वाणी सुनकर प्रह्लाद ने माता के गले में हाथ डाल दिये।

३

जब प्रह्लाद और बड़ा हो गया, वह बराबर भगवान् की बातें ही सोचा करता था—एक दिन हिरण्यकश्यप ने गुरु शुक्राचार्य को बुलाकर कहा—आप हमारे कुल गुरु हैं, प्रह्लाद को आप अब हमारे वंश परम्परा के अनुसार शिक्षा दीजिये। शुक्राचार्य ने कहा—बहुत अच्छा राजन्, मैं प्रह्लाद को गुरुकुल को लिये जाता हूँ और शीघ्र ही शस्त्र और शास्त्र में निपुण कर दूँगा। इतना कह के प्रह्लाद को लेकर चले गये। उन्होंने उसे षण्ड और अर्भक नामक विद्वानों को सौंप दिया, वे दैत्यों की सभा के महापण्डित थे। प्रह्लाद ने जब उनके सामने भी भगवान की चर्चा की तो उन्होंने उसे बहुत रोका पर ज्यों-ज्यों प्रह्लाद को भगवान् की चर्चा से रोका गया त्यों-त्यों वह अधिक भगवान् की चर्चा करने लगे। धीरे-धीरे विद्यार्थियों में भगवान के सम्बन्ध में विवाद बढ़

चला। सण्ड और अर्भक ने यह देखा तो बहुत घबराये—क्योंकि वह जानते थे कि राजा को अगर इस बात का पता लग गया तो वह बिना प्राण लिये न छोड़ेगा। उन्होंने प्रह्लाद और विद्यार्थियों को बहुत डाटा-डपटा पर कुछ भी लाभ न हुआ विद्यार्थियों मे भगवान की चर्चा बढ़ती ही गई। अब प्रह्लाद पीटा भी जाने लगा। परन्तु फिर भी उल्टा ही असर हुआ। बालकों ने गुरु लोगों के विपरीत एक गुट्ट बनाली। लाचार हो गुरु ने प्रह्लाद को राजा के सामने उपस्थित कर कहा—कि यह भगवान् का नाम लेता है, पढ़ता-लिखता कुछ नही।

राजा ने सब बात सुनीं तो वह क्रोध से थर-थर कॉपने लगा। उसने प्रह्लाद से पूछा—"क्या यह सच है?"

"क्या बात पिता जी?"

"कि तुम मेरे शत्रु भगवान् का नाम लेते हो?"

"भगवान तो किसी के शत्रु नही पिता जी।"

"अरे मूर्ख, मेरे ही सामने भगवान की बडाई करता है।"

"भगवान बड़े है, बडाई के योग्य है इसी से पिता जी।"

"अरे कुलकलंगी, तू दैत्य वश का राहु है। तूने गुरुकुल के सभी विद्यार्थियों को मुझ से विद्रोही बना दिया है।"

"नहीं पिता जी, वे वे सिर्फ भगवान की पूजा करते है।"

हिरण्यकश्यप ने क्रोध से लाल होकर कहा—अरे अभागे, भगवान मैं हूँ इस पृथ्वी पर, मेरी ही पूजा होनी चाहिए।

"परन्तु पिता जी आप भगवान नहीं हो सकते—आप क्रोध करते हैं, भगवान क्रोध नहीं करते।"

"कौन है ? वह भगवान।"

"जिसने आपको और मुझे बनाया है।"

"यह सुनकर हिरण्यकश्यप ने अध्यापकों से कहा—"क्योंकि अधम ब्राह्मणों तुम ने मेरे पुत्र को यही शिक्षा दी है। "मैं तुम्हें कोल्हू में पिलवा दूंगा।"

'प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर कहा—"नहीं पिता जी, इसमें गुरुजी का दोष नहीं। मुझे तो भगवान ने स्वयं सच्चा ज्ञान दिया है, और सब विद्यार्थियों को मैंने सिखाया है। मैं आप से निवेदन करता हूं कि आप भी क्रोध और अहंकार को छोड़कर भगवान में अपना मन लगाइये।

इस पर दैत्यराज, दांत पीसता हुआ सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और कहा—अच्छा रे अच्छा, अधम तू मुझी को उपदेश देने का साहस करता है।

उसने तत्काल वधिक को बुलाने को आदेश दिया, वधिक के आने पर कहा—श्मशानमें ले जाकर इसका तलवार से सिरकाट ले। मेरे राज्य में भगवान का नाम लेने वाला जीवित नहीं रह सकता। प्रह्लाद ने पिता को प्रणाम किया और जल्लाद के साथ हो लिया। राज सभा के लोग शोक और आश्चर्य से बालक की वीरता को देखकर दंग थे। वधिक उसे लेकर जब मरघटमें पहुँचे

तो वहाँ का भयकर दृश्य देखकर भी प्रल्हाद वैसा ही शान्त रहा। जल्लादों का उस पर हाथ नहीं उठता था उन्होंने कहा—कुमार हमारा अपराध नहीं है हम राजा के दास हैं।

प्रह्लाद ने कहा—तुम अपना काम करो भाइयो, भगवान तुम्हें क्षमा करेंगे।

परन्तु जल्लाद प्रह्लाद पर वार न कर सके। उनका हाथ ही न उठा, उनके हाथ काँप गये और तलवार छूट कर धरती पर जा पडी और वे घबरा कर भाग गये।

दैत्य राज ने सुना तो उसने क्रोध से अधीर होकर प्रह्लाद को अन्ध कूप मे कैद कर दिया। और लोगों से कहा कि उसे समझा बुझाकर ठीक करे जिससे वह भगवान् का नाम न ले। परन्तु प्रह्लाद को तो अब सिर्फ भगवान् का आसरा था उसकी माता ने रो कर उसे बहुत समझाया—परन्तु उसने माता को ढाढस देकर कहा—माता घबराओ मत भगवान् सब भला करेंगे।

जब हिरण्यकश्यप ने सुना कि यह अपनी हट पर डटा है। तो मतवाले हाथी के पैरों तले कुचल डालने की आज्ञा दी।

मतवाला हाथी लाया गया। और बालक प्रह्लाद को उसके सामने लाया गया। हाथी जोर-जोर से चिंघाडने लगा। लोग यह दृश्य देख भयभीत हो गये। सब समझते थे कि अब बेचारे प्रह्लाद की चटनी यह मतवाला हाथी कर डालता। परन्तु प्रह्लाद को भय नहीं था उसे विश्वास था कि भगवान् मेरे रक्षक हैं। ज्यों ही वह

झुकाता हाथी प्रह्लाद के पास आया उसने उसे सूँड़ से उठाकर मस्तक पर बैठा लिया । सब दर्शक अवाक् रह गये ।

राजा ने अधीर होकर कहा—इस अभागे को काले नाग से डसवा दो । प्रह्लाद को कारागार में बन्द कर दिया गया और उस कोठरी में विषधर सर्प छोड़ दिया गया। प्रह्लाद ने सर्प को भी भगवान् के रूप में देखा—स्तुति करने लगा। सर्प चुपचाप एक ओर गेंडुरी मारकर बैठ रहा। प्रातःकाल पहरुओं ने देखा—प्रह्लाद अचेत पड़ा सो रहा है और सांप फन उठाकर उसके सिर पर छाया कर रहा है। यह सब समाचार सुनकर राजा चिन्ता में पड़ गया। उसने मंत्रियों से सलाह कर उसे हलाहल विष देने का संकल्प किया। विष मिले हुए लड्डू उसके पास भेजे गये। और उस ने भगवान का नाम लेकर वे खा लिए, परन्तु इतने पर भी उसकी मृत्यु न हुई। अन्त में निरुपाय हो हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को धधकती चिता में भस्म कर देने की आज्ञा दे दी।

बड़ी भारी चिता बनाई गई, और उसमें प्रह्लाद को हाथ-पांव बांध कर डाल दिया। चिता जलकर ठण्डी हो गई—प्रह्लाद वैसे ही बैठे रहे। तब हिरण्यकश्यप की बहिन ने कहा—मुझे वरदान है कि मैं आग में नहीं जलूँगी। मैं प्रह्लाद को आग में लेकर बैठूँगी। बस फिर चिता जलाई गई। और ढुँढा प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठी—आग लगाई गई, ढुंढा जल कर भस्म हो गई—प्रह्लाद बैठे ही रहे।

४

इन सब बातों से प्रह्लाद का नाम दूर-दूर फैल गया। लोग दूर-दूर से प्रह्लाद के दर्शन को आने लगे। और घर-घर भगवान् की चर्चा होने लगी। प्रह्लाद भी अब भगवान् का कट्टर भक्त हो गया। राजा ने उसे ऊँचे पर्वत पर ले जाकर ढकेलने की आज्ञा दी। और वह हाथ-पाव बाँधकर समुद्र में फेक दिया गया। परन्तु प्रह्लाद को तब भी चोट न आई।

प्रह्लाद पर जो इतने असीम अत्याचार हुए और प्रह्लाद की भारी भक्ति देखी तो प्रजा का हृदय प्रह्लाद के लिए पसीज उठा। सब कोई प्रह्लाद की शुभ कामना करने लगा। और भगवान् की सत्ता का सभी को श्रद्धा होने लगी राजा यह सब बातें देख कर क्रोध से उन्मत्त हो गया। और उसने प्रह्लाद को अपने सन्मुख महल मे लाने की आज्ञा दी। प्रह्लाद ने पिता को देखकर विनय-पूर्वक प्रणाम किया।

राजा ने कहा—अरे अभागे, क्या अब भी तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं लगी? मै अपने हाथों तेरा वध नही किया चाहता था पर अब देखता हूँ मुझे अपने ही हाथों से तुझे वध करना होगा। देखूँगा तुझे कौन मेरे हाथो से बचाता है तू अपने भगवान् को बुला ले।

प्रह्लाद ने कहा—पिताजी भगवान् को कहाँ से बुलाऊँ—वह तो सब जगह व्यापक है—उसके बुलाने की क्या जरूरत है। राजा ने तब एक लोहे का खम्भा तैयार कराकर उसे आग मे तपा कर

लाल कर दिया। इसके बाद प्रह्लाद को खम्भे से बाँध दिया। एक बार लौह के उस लाल-लाल खम्भे को देखकर प्रह्लाद को भय हुआ पर तुरन्त ही उसने देखा कि खम्भे पर चींटियाँ चढ़ रही हैं। बस उसे मालूम हो गया. ज्यों ही प्रह्लाद को खम्भे से बाँधा गया— धरती हिलने लगी। भयानक शब्द होने लगे — तुरन्त भीषण शब्द के साथ खम्भा फट पड़ा और उसमें से एक अद्भुत मूर्ति निकल पड़ी। उसका आधा शरीर सिंह का और आधा मनुष्य का था। उसे देखकर हिरण्यकश्यप डर से काँपने लगा। उसने विकट चीत्कार कर उसे अनायास ही पंजों में उठा लिया और दहलीज पर बैठकर अपनी जाँघों में रख कर उसका पेट चीर डाला और आँतें अपने गले में डाल लीं।

इस प्रकार उस दैत्य राज का अंत हुआ। प्रह्लाद ने उस नृसिंह मूर्ति के चरणों में सिर नवाया।

उसने प्रह्लाद को गोद में उठा कर कहा—'कुछ वर माँग'।

प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर कहा—भगवान मुझे यही वर दीजिए कि आप की भक्ति मेरे मन में रहे और मेरे पिता का अपराध क्षमा कर उन्हें मुक्ति मिले।

नृसिंह ने कहा—ऐसा ही होगा। अब तुम सिंहासन पर बैठ धर्म-पूर्वक राज्य करो। प्रह्लाद ने भक्ति पूर्वक उन्हें प्रणाम किया। नृसिंह जी आशीर्वाद दे अन्तर्ध्यान हो गये। और प्रह्लाद फिर राज सिंहासन पर बैठ कर धर्म राज्य करने लगे।

: १० :

बालक दुर्गादास

राठौर कुल-केसरी वीर दुर्गादास अपने बचपन मे एक साधारण किसान के बेटे थे। इनके पिता अपने छोटे से खेत मे दिन भर काम किया करते थे और बालक दुर्गादास उनकी सहायता किया करता था। अनाज पक चुका था, राज्य के ऊँटों का एक झुण्ड पके हुए खेतों मे घुसकर खेत को बर्बाद करने लगा। राज के ऊँटों को रोकने का साहस किसानों मे कहा? परन्तु इस समय दुर्गादास बालक अपने खेत की रखवाली कर रहा था। सालभर की बड़े कसाले की कमाई को वह इस प्रकार बर्बाद होते नहीं देख सकता था, उसने चरवाहे से कहा—कि वह ऊँटों को खेत मे जाने से रोके परन्तु राज्य की नौकरी के मद मे मस्त चरवाहे ने बालक दुर्गादास की बात हँसी मे टाल दी।

दुर्गादास का तेजस्वी स्वभाव भला कहा ऐसा अपमान सहन कर सकता था। उसने ललकार कर कहा—कि जो ऊँट मेरे खेत मे आवेगा मैं उसी को मार डालूँगा।

चरवाहे ने यह बात बालक की कोरी धमकी ही समझी। परन्तु ज्यों-ही एक ऊँटनी ने खेत मे कदम रखा दुर्गादास ने तलवार सूँत कर एक ही हाथ मे उसकी गर्दन काट डाली। यह देखकर ऊँट चिल्लाते हुए वहाँ से भाग खडे हुए। चरवाहा भी डर कर भाग गया

दुर्गादास के पिता आसकरण जी ने सुना तो वे बहुत डरे। पर निर्भय दुर्गादास ने कहा—अपराध मेरा है इसलिए राज से जवाब तलब होने पर आप मुझे आगे कर देना, मैं सब निपट लूँगा; आप कोई चिन्ता न करें।

महाराज जसवन्त सिंह उन दिनों जोधपुर के अधिपति थे। उन्होंने आसकरणजी को न्याय के लिए दरबार में तलब किया। वे पुत्र दुर्गादास को साथ ले कर महाराज की सेवा में आ हाजिर हुए। महाराज ने उनसे कहा—"क्या सरकारी सांडनी को तुमने तलवार से मारा था।"

"जी महाराज यह अपराध इस बालक से हो गया।"

महाराज ने बालक दुर्गादास की ओर देखा—वह निर्भय दरबार में खड़ा था—कुछ देर उसको आप देखकर महाराज ने उससे पूछा—"क्यों तुमने मारी थी?"

"जी हाँ महाराज।"

"यह जानते हुए भी कि वह सरकारी है।"

"जी हाँ महाराज!"

"तुमने ऐसा क्यों किया?"

"महाराज, वह मेरे खेत को बर्बाद कर रही थी—हम गरीब किसान हैं। उसी छोटे से खेत पर हमें साल भर गुजर करनी होती है।"

"चरवाहे को तुमने क्यों नहीं कहा।"

"कहा था महाराज।"

"उसने ऊँटों को रोका नहीं।"

"जी नहीं, उल्टा मुझ ही को धमकाने लगा।"

'तुमने ऊँटनी कैसे मारी ?"

दुर्गादास ने इधर-उधर देखा। एक ऊँट चर रहा था। उसने लपक कर तलवार निकाली और एक ही हाथ मे उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया। फिर मराराज के पास आकर कहा—"इस तरह महाराज।"

बालक दुर्गादास की वीरता, साहस, और निर्भयता को देख कर महाराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आसकरण जी से कहा—ठाकराँ तुम घर जाओ, दुर्गादास हमारे काम का आदमो है; यह हमारे पास रहेगा।

तब से दुर्गादास महाराज जसवन्तसिंह के पास रहने लगा। आगे चलकर दुर्गादास ने जो अमर कारनामे किये वे इतिहास में प्रसिद्ध है।

: ११ :

स्कूल के सहपाठी

फ्रांस के प्रसिद्ध न्यायाधीश की वर्षगांठ थी और उसमें नगर के चुने गण्यमान्य पुरुष उपस्थित थे। बढ़िया-बढ़िया खाद्य-पदार्थ मेज पर चुने गये थे, बहुमूल्य मदिराओं की सुगन्ध उड़ रही थी। न्यायाधीश जो बड़े रूखे और कड़े मिजाज के प्रसिद्ध न्यायाधिशान थे, इस समय सरल बालक की भांति अपने बाल काल की एक महत्वपूर्ण घटना सुना रहे थे, उन्होंने कहा—मित्रो, आप सब दोस्तों को यहाँ पाकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ हूँ, लेकिन एक कांटा बचपन से मेरे मन में चुभा है। आज ७० साल जीवन के बाट चुकने पर भी मैं वह कांटा दिल में गड़ा अनुभव करता हूँ। मुझे जीवन में बड़े-बड़े मित्र मिले, जिनकी बदौलत मुझे यह पद और रुतबा हासिल हुआ है। परन्तु वैसा मित्र न मिला, न मिल सकता है। एक बार वह मित्र मुझे मिल जाय और मैं उसकी मित्रता से उऋण हो सकूँ, तो जीवन सफल समझूँ।

बूढ़े नीरस जज के मुख से ऐसी सरस वार्ता सुनकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। सबने एक स्वर से कहा—कृपा कर अपने उस अनन्य मित्र की वार्ता विस्तार से सुनाइये।

बूढ़े जज ने सुगन्धित मद्य की एक चुस्की ली और फिर कुछ कहने को ज्योंही उसने मुँह खोला था—उसके खास कर्मचारी ने आकर धीरे से कहा—श्रीमान शहर पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी

उपस्थित हैं। वे इसी समय कुछ निवेदन किया चाहते हैं। उनके साथ एक कैदी है। उसी के सम्बन्ध में आवश्यक आदेश चाहते हैं।

जज ने क्षण भर सोच कर कहा—वह कैदी कौन है?

कर्मचारी ने कहा—वह प्रसिद्ध विद्रोही नेता है, जिसकोजीता या मरा गिरफ्तार करने के लिये सरकार ने १० हजार स्वर्ण-मुद्रा की घोषणा की थी। बड़ी कठिनाई से यह दुर्दान्त डाकू पकड़ा गया है, और बाहर उसे देखने को अपार भीड इकट्ठी हो रही है। महमान इस नई घटना से और भी चकित हुये। सभी उस विद्रोही को देखने को उत्सुक हो उठे, जो देश भर में प्रसिद्ध हो चुका था। और जिसका आतंक देश भर मे व्यापा हुआ था, सबने कहा—कृपा कर उसे यहाँ बुलाइये। जज ने क्षण भर सोच कर कहा—यहाँ उन्हे बुला लाओ।

जञ्जीरों से जकड़ा हुआ वह धीर पुरुष लोहेके समान बलिष्ट छाती ऊँची किये सामने आ खड़ा हुआ। जज ने खड़े हो कर उसका स्वागत किया और कहा—मेरे वीर-मित्र, तुम्हारी वीरता से मै यह आशा करता हूँ कि तुम विश्वासघात न करोगे। आजमेरी वर्षगाँठ है। मैं आपको इसमें सम्मिलित होने को आमन्त्रित करता हूँ, कृपा कर स्वीकार कर मुझे बाधित करे।

विद्रोही ने मुस्करा दिया। जज ने उसकी हथकड़ियाँ खोलने की आज्ञा दे दी, और अफसर ने आदेश पालन किया। इसके

बाद जज ने अपने पास ही उसके लिये एक कुर्सी रखवा दी।

शासन का काम इसी भाँति चलता रहा। महाजनों ने जज को फिर उसी बाल-मित्र की याद दिलाई, जज ने कहा—जब मैं स्कूल में एक छोटे दर्जे में पढ़ता था, तब की बात है। गाँव का साधारण स्कूल था। और मैं बचपन ही से दुबला-पतला और कमजोर रहा हूँ। जहाँ हमारी क्लास थी उसके और एक दूसरी क्लास के बीच एक पर्दा पड़ा रहता था। मास्टर की सख्त हिदायत थी कि कोई उस पर्दे को न छुये। जो इसे छुयेगा उसे २० बेंतों का दण्ड मिलेगा। इसी डर से कोई उस पर्दे को नहीं छूता था।

परन्तु दुर्भाग्य से एक दिन पर्दा मुझसे छू गया। पर्दे के छूते ही मास्टर ने ललकार कर पूछा—किसने पर्दा छुआ है? मैं डरसे थर थर काँपने लगा, २० बेंत खाने की मुझ में सामर्थ्य नहीं थी। परन्तु मैं काँपता-काँपता खड़ा हो गया। मेरी जीभ तालु से सट गई—मैं कहना चाहता था कि अपराध मैंने किया है।

इतने ही में मैंने देखा दूसरी ओर कक्षा में मेरे पास जो लड़का बैठा करता था वह उठा। उसने मास्टर के पास जाकर धीर-गम्भीर स्वर में कहा—मैंने अपराध किया है।

मैंने एक बार फिर कहना चाहा कि अपराधी मैं ही हूँ पर मेरी बोली न निकली। बेंतों की भयानक मार वास्तव में मैं ही नहीं सह सकता था। मास्टर की आज्ञा से २० बेंतों की सजा उस बालक को देदी गई। बेंतों की चोट से उसके हाथ लोहू-लोहान हो गये। और

उतसे खून टपकने लगा। पर बालक के चेहरे पर वेदना का कोई चिह्न न था, वह मुस्कुरा रहा था। जब वह बेत खाकर अपने लोहू-लुहान हाथों को लेकर मेरे पास से होकर गुजरा तो उसने दया-पूर्ण-दृष्टि से मेरी ओर देखकर मुस्कुराकर धीरे से कहा – दोस्त! बेत से बड़ी चोट लगती है, अब कभी उस परदे के पास न जाना।

वह चला गया और मैं निर्जीव-सा होकर अपनी जगह पर जा बैठा। दूसरे दिन वह स्कूल नहीं आया, फिर वह कभी नहीं आया। मैंने उसे बहुत ढूँढ़ा, ढूँढने मे जीवन बिता दिया। परन्तु अफसोस है कि मेरा वह दोस्त अब तक मुझे नहीं मिला, मै समझता हूँ कि मुझे उसका यह ऋण सिर पर लेकर ही मरना होगा।

एक सहज गम्भीर ध्वनि हुई। सबने आश्चर्य-चकित नेत्रों से देखा कि वह तेजस्वी कैदी धीरे से अपने स्थान से उठ कर कह रहा है—मैं ही वह बालक हूँ और आपको उस ऋण से मुक्त करता हूँ। आपको कायर और अशक्त समझकर ही मैंने वह साहस किया था, मैं काफी बलवान था और आपकी अपेक्षा आसानी से बेतों की चोट सह सकता था, आज भी मेरी वही आदत बनी हुई है। जीवन मे मैंने दूसरों के लिए ही चोटें खाई है।

सब चुप थे। जज मानो मुर्दा हो गये थे, शब्द भी उनके मुँह से न निकला। उसी सन्नाटे मे दावत खतम हुई। सब लोग अपने-अपने घर गये। कैदी फिर हथकड़ी-बेड़ियों से जकड़ दिया गया, और जेल मे डाल दिया गया।

यथा नियम जज के इजलास में कैदी उपस्थित किया गया। इजलास में बड़ी भीड़ थी, क्योंकि जज और उस विद्रोही के बाल-सम्बन्ध को जान गये थे। मुकदमा बड़ी छान बीन से चला, अब सिर्फ हुक्म सुनाना था। अपने उस उपकारी मित्र के लिए-जिसे ढूंढने में उसने जीवन व्यतीत किया, जज क्या हुक्म सुनाता है, यही उसके न्याय की परीक्षा थी। पर जब स्थिर कंठ से जज ने अपराधी को प्राणदण्ड की आज्ञा सुना दी, तो सब लोग आश्चर्य-चकित हो गये। कैदी ने मुस्करा कर धन्यवाद दिया।

जज ने फिर कैदी से कहा—बादशाह से दया प्रार्थना के लिए तुम्हें एक सप्ताह का अवकाश दिया जाता है। और इसके बाद अदालत से चला गया। जज के इस फैसले से उसकी न्याय-निष्ठा की धूम मच गई।

दूसरे दिन जज न्यायासन पर न था। उसने एक सप्ताह की छुट्टी लेली थी; वह सीधा बादशाह से मिलने गया था—जो उन दिनों राजधानी से दूर मुकीम था। बादशाह के पास जाकर उसने अपना स्तीफा पेश कर दिया। और बादशाह के कारण पूछने पर उसने सब हाल बता दिया।

बादशाह ने जज की सिफारिश से न केवल उसका प्राण-दण्ड क्षमा कर दिया—प्रत्युत उसे उसी प्रांत का गवर्नर बना दिया जिसमें उसने विद्रोह का झण्डा ऊंचा किया था।

: १२ :

अंग्रेज वीर बालक

लेडी फास्टर को खाट में पड़े आज नौ महीने बीत गये, पर अभी तक उसके आराम होने का कोई का लक्षण नहीं दीखता, डाक्टर भी अब वैसे उत्साह की बात नहीं कहता नौकर, चाकर, दाई उदास भाव से अपनी मालकिन का उदास मुख देख रहे हैं, छोटी सी रोज अपने बड़े भाई टामस के कन्धे पर झूल कर रो रही है। टामस भी उसके सिर पर हाथ फेर कर चुप-चाप-दिलासा देने की चेष्टा कर रहा है। पर बोल मुँह से नहीं निकलता, उसका भी जी अन्दर ही अन्दर रो रहा है। आज हवा बड़ी तेज और ठण्डी चल रही है—रह-रह कर किवाड़ों से टकराती है। लेडी फारेस्ट की तबियत आज और भी खराब है। खाँसी के मारे दम नहीं जुड़ता। कल से कुछ खाया भी नहीं है। अभी डाक्टर के आने की बात है, पल-पल मे सब की दृष्टि द्वार की ओर जाती है। अन्त मे डाक्टर आए। रोगी को देखकर खिन्न स्वर में बोले, मौसम बहुत खराब है, जरा सावधानी से रोगी को रखना चाहिए। बाहर हवा बड़ी तेज है देखो बेचारी कब से कष्ट भोग रही है, भगवान् इन्हें सुखी करें। डाक्टर की बातों से सभी की उदासी बढ गई। रोगी ने धीमे-स्वर से कहा—मै समझती हूँ, सब समझती हूँ साहब। मुझे अपने जीवन की टिम-टिमाती ज्योति स्वयं दीख रही है। इन बच्चों को ईश्वर के भरोसे छोडती हूँ; मेरा अपना कोई नहीं है.. .. ।

अभी रेखे नही आई हैं, उठता हुआ सीना और तेजस्वी मुख बहुत ही भला लगता है। एक बात और है, इसे कोई कभी उदास नहीं देखता। इन सात वर्षों मे उसने सेना-विभाग, नौ सञ्चालन तथा जासूसी की बडी-बडी डिग्री प्राप्त कर ली हैं।

टामस यद्यपि अपने काम में सदा प्रसन्न रहता, पर अपनी माता के उस चित्र को देखकर वह कभी कभी उदास हो ही जाता। कभी रात को किवाड बन्द करके, कभी दोपहरी को वृक्ष के नीचे कभी मनोरम प्रभात मे नदी के किनारे वह उस चित्र को देखा करता है। छाती पर जहाँ उसकी माँ ने रख दिया था वही उसका स्थान नियत रहा। उसकी बहिन की धुँधली स्मृति उसे घर चलने को कहती थी। शिक्षा काल भी समाप्त हो चला था, उसने एक बार घर हो आने का इरादा कर लिया।

समय दोपहर का था, ऋतु सुन्दर थी, आकाश में एकाध बादल दौड़ रहे थे। टामस एक पेड़ के नीचे एक डाल को पकडे खडा घर की याद करते-करते गीत गा रहा था।

गाते गाते टामस ने देखा—स्कूल के मास्टर उसके गुरु, उसी की ओर चले आ रहे है। उन्हें देखते ही टामस दौड़कर उनके पास पहुँचा और हँसकर कहा—कहिए क्या हुक्म है?

"टामस!" गुरु ने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा—"देखते हो युद्ध की यह भीषणता बढती ही जा रही है अब अपनी मान रक्षा में ब्रिटिश ने भी तलवार खींचना निश्चय कर लिया है"

उत्तेजित होकर टामस ने बीच ही में बात काट कर कहा—"और क्या ब्रिटिश जाति मर गई नहीं ?"

मास्टर ने प्यार से गम्भीर होकर कहा—"यही तो टामस ! देखता हूँ, तुम भी युद्ध के लिये उत्सुक हो गये हो ?"

टामस ने अपनी आँखें मास्टर के मुख पर गड़ाकर कहा—"क्यों नहीं महाशय ! युद्ध में जाना हो तो घर भी न जाऊँ !" मास्टर ने देखा उसके नेत्रों में सरलता और अनुराग के चिह्न हैं।

मास्टर ने टामस का हाथ पकड़ कर कहा—"तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूरी होती दीखती है. देखो न यह जासूस विभाग से तुम्हारे लिये फरमान आया है; स्कूल में तुम्हारे ही ऊपर मेरी दृष्टि गई है। मुझे विश्वास है, तुम अपने स्कूल का नाम उज्ज्वल करोगे। सच तो यों है कि मुझे तुम पर बहुत ही भरोसा है। गाड़ी ४ बजे जाती है; अभी ४ बजे हैं, एक घण्टे का अवकाश बहुत होता है. शायद तुम्हें भी कुछ देर नहीं है।" टामस ने खुले मुख से कहा—कुछ भी नहीं महाशय, केवल बिस्तरा बाँधना है।

मास्टर बोला—सो कुछ नहीं, सब ठीक है, वह स्टेशन भेज दिया है—तुम्हारे सब साथी भी वहीं तुम्हें विदा करने के लिये उपस्थित हैं।

टामस ने टोपी उठा ली और उत्साह से कहा—"तो फिर चलिए, देर क्या है ? पास ही तो स्टेशन है, टहलते-टहलते चलें।"

२

टामस को इस विभाग मे ४-६ मास बीत गये हैं, इसी बीच में वह अपने गुणो से सभी का आदर पात्र बन गया है। जासूस विभाग के प्रधान उसपर बड़ा भरोसा करते हैं। इसी बीच उसने कई मार्के के काम भी कर डाले है, सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह कभी उदास या सुस्त नहीं रहता। भारी-से-भारी काम को वह गुनगुनाता ही कर डालता है।

आज वह किसी खोज मे जाकर तीन-दिन मे लौटा है, कपडों पर धूल जम गई है। उसके चेहरे को देखकर साफ मालूम होता है कि इन दिनों मे न उसे सोना ही नसीब हुआ है, न खाना ही मिला है। अभी वह कोट उतार ही रहा था कि नौकर ने सबसे बड़े अफसर के आने की खबर दी। कोट उतारते-उतारते उसने फिर पहन लिया, और उनके स्वागत को चला, द्वार पर ही उनसे भेट हो गई। देखते ही अफसर ने कहा—टामस देखता हूँ तुम बहुत थके हुए हो।

"ओह नहीं साहब! टामस कभी नहीं थकता, हुक्म?" कह कर टामस सरलता से हँस पडा। उसने देखा अफसर की आवाज भर्रा रही है पर टामस के उत्तर से उसे कुछ ढारस हुआ। उसने कहा—तब तुम क्या अभी लम्बी सफर कर सकते हो?

टामस ने तत्क्षण कहा—"हाँ कर सकता हूँ।"

धन्यवाद, कहकर आफिसर भीतर चले आये। बैठकर कहने लगे टामस भारी संकट आया है.. मे भारी युद्ध हो रहा है सेना

का तीन दिन से समाचार नहीं मिला। शत्रु से जर्मनों के पहुँच जाने से रसद भी नहीं आ पाती। उनके ठीक समाचार कैसे मिलें ?" टामस उठ खड़ा हुआ। "मैं सब ठीक कर दूँगा—अभी चला।" इतना कह कुछ बिस्कुट जेब में भरे, दो चमकती पिस्तौल, बारूद, पलीता कुछ बम के गोले, एक कैमरा, एक दूरबीन, आदि आवश्यक सामान लेकर चल खड़ा हुआ, घोड़े पर थपकी दी, और घोड़ा उड़ चला। टामस को सभी जानते थे। जहाँ कोई जान-पहचान का मिल जाता स्वागत करता, टामस भागते-ही-भागते टोपी उतार हँसते-हँसते स्वागत करता चलता गया।

घोड़ा उड़ा चला जा रहा था [illegible] लग रही थी, जेब भी बिस्कुटों से भर रही थी। जेब से एक बिस्कुट निकालकर मुँह में डाला ही था कि एक गोली सनसनाती आई और कान के पास से निकल गई। टामस तुरन्त घोड़े से इस प्रकार गिर पड़ा मानो गोली लग कर गई हो। घोड़ा भी वहीं खड़ा हो गया, उसका दाहना बाजू जख्मी हुआ था। उसमें से खून बहने लगा। टामस ने पड़े-पड़े जल्दी से एक पट्टी घोड़े के जख्म पर बाँध दी। और पर्चे में लिखा कि......दक्षिण सेना भेजो......पर मेरी सहायता करो।" चिट्ठी घोड़े की जीन में खोंस दी, और चाबुक मार दिया घोड़ा घर की ओर भाग चला जहाँ उसका खून पड़ा था—वहीं छाती रख कर टामस औंधा पड़ रहा। इसके दो ही मिनट बाद पाँच-छः जर्मन सिपाही, अफसर बन्दूकें लिए दौड़े-दौड़े वहाँ

आये उनमें से एक ने कहा—"जीता है?" दूसरा बोला—कहाँ? मर गया साला।

तीसरा—देखो तो! कुछ साँस है भी।

पहला—होशियार, देखो हमला न करे।

दो आदमियों ने एक हाथ में पिस्तौल लिया। एक ने उसे सीधा किया। उसका बदन अकड़ गया था। और छाती खून में भर गई थी। मुँह में बिस्कुट भी था। वह कुछ बाहर भी आ गया था, दोनों बोल उठे 'मर गया, गोली साले की छाती को पार कर गई।'

अब अफसर ने कहा—ठीक; इसे इस गार में डाल कर मिट्टी दे दो। दो आदमी रहो। अफसर लौट गया—दो सिपाही रह गये। उन्होंने टामस की टाँग पकड़कर गार में धकेल दिया। और मिट्टी भरने लगे। टामस बेचारा चुपचाप पड़ा रहा।

एकाएक साँय-साँय की आवाज आकाश में गूंज गई। जर्मन सिपाहियों ने देखा अंग्रेजी हवाई जहाज हैं। उनके देवता कूच कर गये और एक-एक कर भाग खड़े हुए। टामस ने विषम साहस किया। और अपने ऊपर की मिट्टी हटाकर सीधा ब्रिटिश लाइन की ओर चल दिया। ठीक समय पर उसने वह महत्वपूर्ण पत्र अपने अफसर को दे दिया। और उसी रात सूर्योदय से पूर्व ही उस अफसर ने पत्र में लिखी योजना के आधार पर मोर्चे को फतह कर लिया। परन्तु इस विजय का सेहरा टामस के सिर बँधा, और उसे विक्टोरिया क्रास मिला।

: १३ :

बालक एडीसन

एक छः वर्ष के बालक ने देखा कि एक बतख अपने अण्डों पर बैठी उन्हें से रही है। इस दिलचस्प तमाशे को यह कई दिन तक बैठा बड़े ध्यान से देखता रहा। कुछ दिनों में अण्डों से बच्चे निकल आये, यह देख उसे बहुत आनन्द हुआ। उसने मन में सोचा मैं भी इसी तरह अण्डे सेऊं तो बच्चे निकल आयेंगे। यह सोच उसने बहुत से अण्डे इकट्ठे किये, और घोंसला बना उन पर बैठ गया, तथा धैर्य से इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि अण्डों में से कब बच्चे निकलेंगे।

जब बच्चे की माता को पता नहीं चला तो उसको खोज पड़ी। खोजते खोजते उसने देखा कि बच्चा तो अण्डों पर बैठा हुआ है। इसका कारण पूछकर उसकी माँ ने घोंसला नोचकर फेंक दिया और अण्डे उठा कर ले गई।

यही बालक एडीसन था। यह एक निर्धन माता-पिता के घर पैदा हुआ था। इस कारण बचपन ही में इसके माथे पर आजीविका का बोझ आ पड़ा था। कुछ बड़ा होने पर उसने रेल में अखबार बेचने का काम शुरू किया। इस काम में खूब सफलता मिली। और वह अपनी उन्नति करने के नये-नये उपाय सोचने लगा। कुछ दिन बाद उसने कुछ पुराना टाइप और थोड़ा छापने का समान खरीद लिया, और गार्ड से उसके डब्बे में थोड़ी सी जगह माँग

कर एक छोटा सा अखबार छापना शुरू कर दिया। इस वक्त उसकी आयु सिर्फ १५ साल की थी। फुर्सत मिलने पर वह बिजली के प्रयोग सीखता रहता था। अपनी आमदनी से वह जितने पैसे बचाता उसके पुराने रद्दी यन्त्र खरीद लेता और उन्हें ठीक-ठाक करके काम बना लेता था।

दिन के समय वह स्टेशनों पर तार-घरों का काम देखा करता था। जो लोग तार का काम करते थे उनसे इस सम्बन्ध में बात-चीत किया करता था। इससे थोड़े दिनों मे उसे तार के सम्बन्ध की बहुत सी बातों का ज्ञान हो गया।

धीरे धीरे उसका ज्ञान बढता ही गया और उसे एक स्टेशन मास्टर की कृपा से तार विभाग मे काम करने का अवसर भी मिल गया।

एक बार ऐसा हुआ कि उसके गांव के पास की नदी में जाड़े की ऋतु मे बर्फ जम गई, पर गर्मी आने पर जब बर्फ पिघली तो उसके बोझ से तार के दो खम्भे टूट गये। जिससे तार का आना-जाना ही रुक गया। नदी किनारे बहुत लोगों की भीड जमा हो गई। किसी की समझ में न आया कि वह क्या करे। इसी भीड मे एडीसन भी था। सामने एक एञ्जिन खडा था, एडीसन लपक कर उस पर चढ गया, और उसकी सीटी इस तरह बजानी शुरू की कि उसमें से तार के सांकेतिक शब्द निकलने लगे। इन स्वर संकेतों की मदद से वह बार-बार सन्देश भेजने लगा। दूसरी

और वालों ने उसे समझ कर संकेत से उत्तर देना आरम्भ कर दिया। इससे एडीसन की बड़ी तारीफ हुई और अब वह एक कुशल तार मास्टर हो गया। परन्तु उसकी आकांक्षायें तो बहुत ऊँची थीं। वह दिन-रात बिजली की विद्या को सीखने में लगा रहता था और नित्य नये-नये प्रयोग करता रहता था। एक दिन वह एक सस्ती पुरानी बिजली की विद्या की पुस्तक खरीद लाया और सारी रात उसे पढ़ता रहा।

अब उसने प्रचलित तार प्रणाली को सुधारने के काम में हाथ डाला, उसने उसे शीघ्रगामी बनाने की युक्ति निकाली। उसके दोष और त्रुटियाँ दूर कीं, और तार के खर्च को भी कम किया जिससे सर्व साधारण को बड़ी सुविधा हुई। उस समय तक एक तार पर एक ही सन्देश भेजा जा सकता था, पर अब एक तार पर ६ सन्देश तक भेजे जाने लगे।

फिर तो उसने एक-से-एक बढ़ कर आविष्कार किये। सभ्य संसार में जो एक-से-एक बढ़ कर यन्त्र हैं, उनमें बहुत से एडीसन के आविष्कृत हैं। ग्रामोफोन भी उसी ने निकाला, और टेलीफोन भी उसी ने बनाया, बाइस्कोप की सृष्टि भी उसी ने की। बिजली की ट्रेन, मोटरें सब उसी का आविष्कार हैं। वह विश्वविख्यात और निरहंकार पुरुष हो गया है। उसने अतुल धन और बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

: १३ :

बुकर टी० वाशिंगटन

सन् १८५८ के एक प्रातःकाल को लट्ठों और बल्लियों के वने एक टूटे-फूटे छप्पर मे एक बालक जन्मा—उसकी माँ जर-खरीद गुलाम थी और उसे प्रसव के लिये सिर्फ २४ घंटे की छुट्टी मिली थी। वह जाति की हबशी थी जिन्हे स्वतन्त्र करने के लिये ही अमेरिका मे बडा-भारी युद्ध हो चुका था, परन्तु फिर भी हबशी गुलाम पशुओं से बदतर समझे जाते थे। इस बालक का नाम बुकर टी० वाशिंगटन रखा गया—जिसने अपनी जाति को उन्नत करने मे अपना जीवन व्यतीत किया। उसकी माँ एक अमीर अमेरिकन की खरीदी हुई दासी थी। और अपने मालिक के गुलामो के लिये रोटियाँ बनाया करती थी। उसे रहने के लिये रसोई घर के पास ही एक झोंपड़ा दे दिया गया था। जिसमे एक पुराने चीथड़ों की गुदड़ी मे उसने बालक को जन्म दिया था। वह झोंपड़ी ऐसी थी कि सर्दियों मे ठडी वायु के तीर से झोके उसे सताते थे। और गर्मी मे लुओं के झोंके उसे झुलसाया करते थे।

१२ वर्ष की उम्र तक उस बालक को टोपा नसीब नहीं हुई। एक दिन उसने अपने मालिक के बच्चों को पुए खाते देख मन मे सोचा कि जिस दिन मुझे पूआ खाने को मिल जायगा उस दिन से बढकर कोई दिन मेरे लिये सुखकर न होगा।

बडे होने पर उसे सेवों मे काम करने और बाग मे झाडू लगाने

का काम दिया गया। जब वह कुछ और बड़ा हुआ तो मालिकों के खाना खाने के समय मक्खियाँ उड़ाने का काम उसे दिया गया। वह कभी सोच भी न सकता था कि उसे लिखने-पढ़ने का भी अवसर मिलेगा। जब वह मालिकों के बच्चों की किताबें लेकर स्कूल तक पहुँचाने जाने लगा तो स्कूल को देख उसके मन में विचार आया कि स्कूल में पढ़ने से अधिक आनन्द-दायक स्वर्ग भी नहीं हो सकता।

इन्हीं दिनों गुलाम आज़ाद हो गये। आज़ाद होने पर बुकर अपनी माँ के साथ अपने सौतेले बाप के पास रहने और नमक की खानों में काम करने लगा। प्रातः आठ बजे से लेकर रात के आठ बजे तक उसे वहाँ काम करना पड़ता था। पढ़ने की उसकी बड़ी इच्छा थी। पर समय न था। वह स्कूल में पढ़ने को लड़कों को जाते देख कुढ़ा करता था। अन्त में बड़ी कोशिश से उसे रात को किसी रात्रि पाठशाला में पढ़ने की आज्ञा मिल गई। पर इस पढ़ाई से उसकी तृप्ति न होती थी। अन्त में उसके बहुत कहने सुनने से दिन के स्कूल में पढ़ने की आज्ञा इस शर्त पर मिल गई कि वह स्कूल से समय बचा कर चार घंटे ज़रूर कारखाने में काम करे। पर थोड़े दिन बाद ही उसके लालची सौतेले बाप ने उसे दिन भर काम में जोत दिया। बाद में उसे कोयले की खानों में काम करना पड़ा। इससे वह बहुत असंतुष्ट था। उससे किसी ने कहा कि हबशियों के लिये हैम्पटन में अच्छा स्कूल खुला है। परन्तु वहाँ वह जाय कैसे? इसी बीच उसे पता लगा कि किसी गोरी स्त्री को एक नौकर की

जरूरत है। वह बडी बदमिजाज थी, कोई नौकर उसके यहाँ टिकता ही न था, पर बुकर ने उसके यहाँ नौकरी कर ली। और अपनी सेवा और तत्परता से उसे इतना प्रसन्न कर लिया कि वह बुकर को अपने घर का आदमी समझने लगी। यहाँ रहकर उसने बहुत कुछ सीखा, डेढ़ वर्ष नौकरी करके कुछ रुपया इकट्ठा करके उसने हेम्पटन चलने की ठानी।

मालडेन से हेम्पटन ५०० सौ मील से भी अधिक था, पर वह हिम्मत बाँध कर चल ही दिया—रास्ते में उसे बड़े-बड़े कष्ट सहने पड़े। कही-कही उसे रात गल मे दरख्तों पर चढकर काटनी पडी, कहीं सड़को और नालियों मे सोकर सर्दी की भयंकर राते कटती ही न थीं। अन्त मे वह रिचमण्ड पहुँच गया। अब उसके पास एक पैसा भी न था, सोने की जगह कहाँ मिलती—वह एक पुल के नीचे सूखे नाले मे सो रहा। प्रातःकाल उसने देखा—सामने एक जहाज लोहा उतार रहा है। वह भी लोहा उतारने लगा - तब कहीं चौथे दिन शाम को उसे भोजन मिला। कुछ दिन उसने वहाँ मजदूरी की, और कुछ रुपया जमा करके वह फिर आगे चला।

रास्ते मे बडे-बड़े कष्ट झेलता हुआ यह विद्या-प्रेमी बालक अन्त मे स्कूल के द्वार पर पहुंचा। पर अध्यापिका ने इसे बहुत मैला-कुचैला देखकर स्कूल मे दाखिल करने से इन्कार कर दिया—पर जब बुकर ने बहुत विनती की तो अध्यापिका ने उसे कमरे

से झाड़ू लगाने को कहा गया। बुकर ने तीन बार झाड़ू दी फिर कपड़े से सब चीजें अच्छी तरह झाड़ीं। अध्यापिका ने आकर कमरा देखा। रूमाल निकाल कर हर एक चीज को रगड़-रगड़ कर देखा; सब साफ़ चमचमाता हुआ था, वह प्रसन्न हो गई और उसने बुकर को स्कूल में दाखिल कर लिया। दूसरे विद्यार्थियों के कमरे में झाड़ू देना—बिस्तर ठीक करना, भोजन बनाने में मदद करना यह काम उसे मिले। बदले में उसे भोजन और शिक्षा मिलने लगी। इस प्रकार तीन वर्ष तक वह काम करके पढ़ता रहा, पर घर वह छुट्टियों में भी न जाता। क्योंकि रुपया पास न था। छुट्टियों में केवल मजदूरी कर के वह कपड़े-लत्ते बनवा लेता। तीन वर्ष में उसने स्कूल की सारी पढ़ाई समाप्त कर ली।

अब वह घर लौटा, और अपने जाति-भाइयों के लिए एक स्कूल उसने खोला। और विद्यार्थियों को तैयार करके हैम्पटन के स्कूल में दाखिल करवाया। कुछ दिन बाद वह अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में ट्रेनिंग के लिये गया। आठ महीने बाद जब वह लौटा तो उसे हैम्पटन स्कूल में पढ़ाने तथा बोर्डिंग हाउस के प्रबन्ध के लिये बुला लिया गया। क्योंकि जिन लड़कों को पढ़ा कर उसने स्कूल में भेजा था—उनसे अध्यापक बहुत सन्तुष्ट थे।

हैम्पटन में बुकर ने ऐसी अच्छी तरह काम किया कि अलबामिया में जब वहाँ की सरकार ने हबशियों के लिये नया स्कूल खोलने की

योजना की तब बुकर ही उसके संचालक पद पर नियत किया गया। यह स्कूल टस्केजी गाँव में था। सरकार ने सिर्फ छः हजार रुपया सालाना सहायता देने के अतिरिक्त स्कूल से कोई संबंध न रखा। पर बुकर ने उस स्कूल को एक झोपड़ी से बढ़ाकर एक विशाल कालेज बना दिया।

शुरू मे एक टूटे गिरजे मे उसने लड़कों को पढ़ाना शुरू किया। जब मेह बरसता तो उसे छाता लगाना पड़ता। क्योंकि सारी छत चून लग जाती। विद्यार्थी पढते जाते और भीगते जाते थे। पर १८ वर्ष के सख्त परिश्रम से बुकर ने उसकी भव्य इमारत बनवा ली और वह ऐसा प्रसिद्ध कालिज हो गया कि एक बार अमेरिका के प्रेसीडेण्ट भी उसे देखने आये और बुकर टी० वाशिंगटन की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अपने जीवन मे आगे चलकर यह बालक बहुत प्रसिद्ध हो गया। सभी बड़ी-बड़ी सभाओं में उसे बुलाया जाने लगा—विश्व विद्यालयों ने उसे आनरेरी उपाधियाँ देकर अपने को कृतार्थ समझा। अमेरिका के प्रेसीडेण्ट ने उनको अपने साथ भोजन करने को राजभवन में बुलवाया, और जब वह इंगलैंड गया था तो महारानी विक्टोरिया ने भी अपने साथ चाय पीने के लिये उसे बुलाया था।

: १४ :

उत्तङ्क

प्राचीनकाल में आयोद धौम्य के शिष्य वेद बड़े भारी ऋषि प्रसिद्ध हुए। उत्तङ्क उन्हीं का शिष्य था। उसने भली-भाँति गुरु सेवा करके समस्त विद्याओं का अध्ययन किया। जब वह समस्त वेद-शास्त्रों में पारंगत हो गया, तब गुरु जी ने उसे घर जाने की आज्ञा दी। इस पर उसने हाथ जोड़ कर गुरु जी से पूछा—महाराज, मुझसे कुछ गुरु दक्षिणा लीजिये। गुरु जी ने कहा, पुत्र हम तो तेरी सेवा ही से प्रसन्न और संतुष्ट हैं, परन्तु तेरी यदि यही इच्छा है तो जाकर गुरु-माता से पूछ—उन्हें जो कुछ इच्छा हो, उसकी पूर्ति कर—इसी से हम संतुष्ट हो जायेंगे।

इस पर उत्तङ्क ने गुरु-पत्नी के पास जा हाथ जोड़ कहा—माता, गुरुजी ने मुझे स्नातक बनाकर घर जाने की आज्ञा दी है और कहा है कि गुरु-दक्षिणा में जो माता माँगे वही लाकर उन्हें संतुष्ट करो। इसलिये मैं सेवा में आया हूँ, आप कहिए कि मैं आप की क्या इच्छा पूरी करूँ? गुरु-पत्नी ने उत्तङ्क की बात सुन कर कहा—तेरी यदि यही इच्छा है तो मुझे वे कुण्डल लादे जो पौष्य राजा की रानी पहनती है, आज से चौथे दिन त्योहार है उस दिन वही कुण्डल पहन कर मैं ब्राह्मणों को अन्न परोसना चाहती हूँ—जा यह काम कर—इसमें भूल हुई तो तेरा अनिष्ट होगा।

गुरु-माता की यह आज्ञा पाते ही उत्तङ्क चल दिया। रास्ते में उसे एक बडा बैल मिला, उस पर एक दीर्घकाय आदमी बैठा था—उसने कहा— अरे, उत्तङ्क! तू इस बैल का गोबर खा ले।

उत्तङ्क ने कहा—वाह; भला मैं ब्राह्मण का बालक बैल का गोबर क्यों खाऊँ?

इस पर बैल के सवार ने कहा—अरे विचार न कर, तेरे गुरु ने भी इसका गोबर खाया है, जल्दी कर।

उत्तङ्क ने कहा—गुरुजी ने खाया है तो अच्छी बात है; मैं भी खाऊँगा। यह कहकर उसने जल्दी-जल्दी बैल का गोबर खा लिया और भागते-भागते कुल्ला कर चल दिया।

जब वह राजा पौष्य की राज सभा मे पहुँचा तो राजा ने सत्कार करके कहा—कहिए ऋषि कुमार, मैं तुम्हारी कौन सी इच्छा को पूर्ण करूँ?

उत्तङ्क ने कहा—मै गुरु-दक्षिणा के लिये आपकी रानी के कुण्डलों की याचना करता हूँ, वे आप मुझे दीजिए।

राजा ने कहा—आप रनवास मे चले जाइये, वहाँ आप रानी ही से कुण्डल माँग लीजिए।

परन्तु जब राज-महल मे जाकर उत्तङ्क ने रानी को नहीं देखा तो उसने लौटकर राजा से कहा—वहां तो रानी हैं ही नहीं, आप मुझ से झूठ क्यों बोले।

राजा ने कहा— मैं झूठ नहीं बोला, आप उच्छिष्ट मुख और

इसलिए कि इसमें पतिव्रता रानी आपको नहीं दीख पाई है। पतिव्रता स्त्री को अपवित्र पुरुष नहीं देख पाता है।

उत्तङ्क ने कहा—ठीक है, मैंने भागते-भागते आचमन किया था। यह कहकर उसने पूर्वाभिमुख बैठ—हाथ, पैर, मुँह धोए। और ठीक तरह आचमन किया। इस प्रकार पवित्र होकर वह जब रनवास में पहुँचा तो अब रानी उसे दीख पड़ी।

रानी ने आदरपूर्वक उसे उच्चासन पर बैठा कर कहा—कहो ऋषिकुमार, तुम्हारी मैं क्या इच्छा पूर्ण कर सकती हूँ। ऋषिकुमार ने कहा—मुझे गुरु-दक्षिणा के लिये आपके कुण्डल चाहियें।

रानी ने कुण्डल उतार कर दे दिये। कहा—सत्पात्र को दान देना ही उचित है। परन्तु तुम इन कुण्डलों को सावधानी से रखना क्योंकि नागराज तक्षक हमेशा इनकी ताक में रहता है।

उत्तङ्क ने कहा—आप चिन्ता न करें। मैं बहुत सावधानी से इनको ले जाऊँगा। इतना कह, कुण्डल ले वह राजा के पास आया। और कहा—राजन मैं बहुत प्रसन्न हूँ; मुझे कुण्डल मिल गये।

राजा ने कहा—यह तो बहुत ही प्रसन्नता की बात है। परन्तु आप जैसे पवित्र ब्रह्मचारी कठिनाई से मिलते हैं। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप भोजन करके जावें।

ऋषि कुमार ने कहा—परन्तु मुझे बहुत जल्दी है, यदि भोजन तैयार हो तो मैं भोजन कर सकता हूँ।

राजा ने कहा—भोजन तैयार है। तब उत्तङ्क आसन पर बैठ

गये और भोजन परोसा गया तो उसने देखा कि भोजन ठंडा है और उसमे एक बाल भी पड़ा है। इस पर क्रुद्ध हो उत्तङ्क ने कहा—तुमने अपवित्र भोजन परोसा है, इससे तुम अन्धे हो जाओगे।

राजा ने कहा—तुम तो अच्छे अन्न को दूषित बताते हो इससे तुम्हे सन्तान नहीं होगी।

उत्तङ्क ने कहा—वाह, आप दूषित अन्न का दान करके भी शाप देते हैं। आप अपना अन्न देखिए तो सही।

राजा ने देखा तो वह ठण्डा था, और उसमे बाल भी था। उसने कहा—अज्ञान से ऐसा हुआ है, इसे जिस स्त्री ने बनाया है उसके बाल खुले थे। इससे आप मुझ निरपराध को शाप न दे। मैं अन्धा न होऊं। ऋषि कुमार ने कहा—मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं होता—पर अन्धे से फिर आँख वाले हो जाओगे। और मुझे भी जो तुमने शाप दिया है वह भी सत्य न हो।

राजा ने कहा—मेरा शाप तो मिथ्या हो ही नहीं सकता। ब्राह्मण का हृदय कोमल और वाणी कठोर होती है। पर क्षत्रिय की वाणी कोमल और हृदय कठोर होता है इसलिये मैं शाप नहीं लौटा सकता—आप जाइये।

ऋषि कुमार ने कहा—मैंने दूषित अन्न को ही दूषित बताया है। अदूषित को नहीं, इससे तुम्हारा शाप मुझे नहीं लगेगा। यह कह वह कुण्डल लेकर चल दिया।

मार्ग मे उसने देखा—एक नंगा साधू इसके पीछे लगा है। वह

कभी सूँघ पड़ता है और कभी छिप जाता है। आगे चलकर नदी किनारे वह कुण्डलों को भूमि पर रखकर स्नान सन्ध्या करने बैठ गया। अवसर पा वह नंगा साधु कुण्डल उठाकर भाग गया।

सन्ध्या वन्दन से निवृत्त होकर उत्तङ्क उसके पीछे भागा। भागते भागते उसने साधु को पकड़ लिया। पकड़ते ही वह अपना स्वरूप त्याग सर्प हो गया। और फुफकार कर उसने कहा—मैं तक्षक हूँ। इतना कह वह भूमि में घुस गया। भूमि में घुस कर तक्षक नाग-लोक में जा पहुँचा। उत्तङ्क भी अपनी लाठी से उस बिल को खोदने लगा। परन्तु खोद नहीं सका। थक कर दुखी हो बैठा रहा।

इन्द्र ने जब उसे दुखी देखा तो अपने वज्र को भेजा, वज्र ने उसकी लाठी में प्रविष्ट होकर तत्काल उस बिलको खोद डाला—उत्तङ्क उस बिल में घुस गया। और नाग लोक में पहुँच गया।

नाग लोक में पहुँच कर उसने बड़े-बड़े महल, बाग और नगर देखे। नागलोक की शोभा देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया। उसने देखा—नागों का राजा ऐरावत है, जो मेघों की वृष्टि के समान वायु-वर्षा करता है। सुन्दर नाग गण भाँति-भाँति के कुण्डल पहिने घूम रहे हैं। उसने कुण्डलों की प्राप्ति के लिये बहुत चेष्टा की, नागों की तथा तक्षक की स्तुति की, पर उसे कुण्डल नहीं मिले। तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। अचानक उसने क्या देखा, कि शौभनवेना (कपड़े बुनने के यन्त्र) पर दो स्त्रियाँ कपड़े बुन रही हैं। उसमें काले और सफेद तार लगे हैं। ६ कुमार बारह पंखड़ी वाले

चरखे को चला रहे हैं। पास ही एक सुन्दर घोड़ा और एक पुरुष भी खड़ा है। उसने इन सब की भी स्तुति की। परन्तु उसका काम सिद्ध नहीं हुआ। कुण्डल उसे नहीं मिले। विवश हो उसने देवराज इन्द्र का स्मरण किया। इस पर घोड़े के पास खड़ा हुआ वह पुरुष बोला—अरे, आयुष्मान्! तू क्या चाहता है? कह।

उत्तङ्क ने कहा—मुझे कुण्डल मिल जायँ।

उस पुरुष ने कहा—इस घोड़े की गुदा मे फूँक मार।

उत्तङ्क ने ऐसा ही किया। फूँक मारतेही उसके सब स्रोतों से धुआँ और आग की लपटे निकलने लगीं। उस धुए से नागलोक भर गया, तब घबराया हुआ तक्षक कुण्डल लेकर आया और उत्तङ्क से कहा—आप अपने कुण्डल ले जाइये। और इस ज्वाला से नागलोक को बचाइये। उत्तङ्क कुण्डल पाकर बहुत प्रसन्न हुआ।

अब वह इस चिन्ता मे पड़ा कि घर जल्दी कैसे पहुँचे, क्योंकि उसी दिन वह पर्व का दिन था। उस पुरुष ने उत्तङ्क के मन की बात ताड कर कहा—तुम इसी घोड़े पर सवार हो जाओ, यह तुम्हे अभी गुरुकुल मे पहुँचा देगा। बस उत्तङ्क तुरन्त घोड़े पर सवार हो गया, और क्षण मे गुरुकुल मे जा पहुँचा।

गुरुआनीजी स्नान कर चुकी थी, और उन्हे देर हो रही थी। वे क्रुद्ध होकर उतङ्क को शाप देने वाली थी कि उतङ्क आ पहुँचा, और कुण्डल गुरुआनीजी के आगे धर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

इस पर प्रसन्न होकर गुरुआनी ने उसे आशीर्वाद दिया। गुरुजी भी बहुत प्रसन्न हुए और देर का कारण पूछा।

उत्तङ्क ने सब हाल ब्योरेवार कहा। और पूछा कि महाराज, मार्ग में जो बैल मिला वह कौन था? और उसका पुरुष कौन था? उसने मुझे उसका गोबर क्यों खिलाया था? और नागलोक में दो स्त्रियां कपड़ा बुन रही थीं वे कौन थीं? उनके वे काले और सफेद तन्तु क्या थे? उस चक्र में बारह आरे क्या थे? और जो ६ कुमार उसे चला रहे थे वे कौन थे? वह विशाल घोड़ा और वह पुरुष कौन था? गुरुजी ने कहा—मार्ग में जो बैल तूने देखा वह ऐरावत नागराज था, और जो उस पर पुरुष सवार था वह इन्द्र था, तूने जो उसका गोबर खाया वह अमृत था। इसीसे तू नागलोक में मरा नहीं। वे दोनों स्त्रियां धाता और विधाता, अर्थात् चित्त और माया थीं। काले और सफेद जो तन्तु थे वे रात और दिन थे। जो बारह आरों का जिसे ६ कुमार चला रहे थे वे ६ ऋतु और चक्र सम्वत्सर था। जो पुरुष घोड़े के पास था वह इन्द्र था और वह घोड़ा अग्नि था।

इन्द्र मेरा मित्र है, इसीसे उसने तेरी सहायता की। बिना उसकी सहायता के तू कुण्डल प्राप्त नहीं कर सकता था। अब तू जा आनन्द से रह। तेरा कल्याण हो मैं आशीर्वाद देता हूँ।

यह सुनकर उत्तङ्क ने गुरु को प्रणाम किया और चला गया।

चन्द्रहास

बहुत दिन की बात है। केरल देश में मेधावी नामक एक धर्मात्मा राजा का राज्य था। उसका एक इकलौता बेटा था। उसका नाम चन्द्रहास था। जब चन्द्रहास बहुत ही छोटा था उसके पिता केरल नरेश एक युद्ध में मार डाले गये और उसकी माता अपने पति के साथ सती हो गई। राज्य पर शत्रुओं का अधिकार हो गया। इस मुसीबत मे चन्द्रहास की धाय कुमार को चुपके से निकालकर ले भागी। और कुनलपुर में रहने लगी। उसने तीन वर्ष तक मिहनत मजदूरी करके कुमार का लालन-पालन किया। इसके बाद वह भी एक दिन मर गई।

चन्द्रहास निपट अनाथ और असहाय हो गया। पास-पडोस के स्त्री-पुरुष अब उस अनाथ बालक को खाने-पीने को दे देते। यह किसी को पता न था कि यह केरल का युवराज है। इसी भाँति उसे कुंनलपुर में रहते-रहते कुछ काल बीत गया।

कुन्तलपुर के राजा की पुत्री बडी सुन्दरी थी। उसका नाम चंपक मालिनी था। राजा के गुरु गालब ऋषि थे। उनके सत्संग से राजा की मति धर्म मे रहती थी और वे सदा पूजा-पाठ मे लगे रहते थे. राज-काज मन्त्री के हाथ मे था, मन्त्री का नाम धृष्टबुद्धि था, वही कुंनलपुर का कर्ता-धर्ता था। उसने जोड-बटोरकर बडी भारी संपत्ति जमाकर ली थी। उसके दो पुत्र और एक पुत्री थी।

पुत्रों का नाम मदन और अमल था, पुत्री का नाम विषया था। विषया परम सुन्दरी थी। मदन और अमल दोनों राज काज में पिता की पूरी मदद करते थे। मदन धर्मात्मा था पर धृष्टबुद्धि दिन रात राजगद्दी के हथियाने में लगा रहता था। मदन की मित्रता चंद्रहास से हो गई और चन्द्रहास मदन के पास आने-जाने लगा।

जब कुछ दिन इस प्रकार बीत चले तो किसी तरह मंत्री को पता लग गया कि यह केरल का राजकुमार है। मंत्री धृष्टबुद्धि का केरल नरेश की मृत्यु में बहुत कुछ हाथ था। वह चन्द्रहास को मार डालने का कोई अवसर ताकने लगा। एक दिन अवसर पाकर वह चन्द्रहास को जंगल के एकान्त स्थान में ले गया और वहाँ वधिक को बुलाकर उसके सुपुर्द कर दिया और जल्लाद से कहा— आज ही काम बनाकर निशानी लाओ और पूरा इनाम पाओ। जल्लाद चन्द्रहास को लेकर चुप-चाप वहाँ से चल दिया।

जब चन्द्रहास को पता चला कि यह मुझे मार डालने के लिये लाया है तो उसने उससे कहा कि भाई, मुझ अनाथ बालक को मार कर तुझे क्या मिलेगा। जो थोड़ा धन मिल भी गया उससे तुझे क्या सुख मिलेगा। जल्लाद को उसपर दया आ गई। चन्द्रहास के एक पैर में छै अङ्गुलियाँ थीं। तब उसने छठी अंगुली काट ली और चन्द्रहास को वहीं छोड़ लौटा और कटी उँगली दिखा दी। इसे देखकर धृष्टबुद्धि प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गया।

बालक चन्द्रहास उँगली कटने के दर्द से कराहता हुआ वहीं

जंगल में पड़ा रहा। दैवयोग से वहाँ चन्दनपुर के राजा शिकार खेलते हुए आ निकले—राजा के कोई पुत्र न था, उस ने बालक चन्द्रहास को अपनी गोदी में उठा लिया—और उससे इस दुर्दशा का कारण पूछा तो चन्द्रहास ने सब हाल बता दिया—परन्तु वह अपने माता-पिताके सम्बन्ध मे कुछ नहीं जानता था इससे कुछ न बता सका। फिर भी उसके शरीर मे राज चिह्न देख राजाने समझ लिया कि यह अनाथ किसी बड़े वश का कुमार है। और वह उसे अपनी राजधानी मे ले आया और पुत्र की भांति पालने लगा।

चन्द्रहास यहां रहकर बड़े आनन्द के साथ राजकुमार की भाति रहने लगा—कुछ दिन बाद राजा ने उसे युवराज घोषित कर दिया। वह बड़ा मेधावी था—इसलिये शीघ्र ही सब विद्याओं मे निपुण हो गया। और अपने सद्गुणों तथा विनम्र स्वभाव से सारे राज-परिवार का और प्रजा का प्रिय बन गया। युवा होने पर वह बडा बांका वीर निकला।

चन्दनपुर की रियासत कुन्तलपुर के अधीन थी और वहा का राजा १० हजार मोहर सालाना कर दिया करता था। पर इस बार चन्द्रहास ने १० हजार के अलावा और बहुत सा धन-माल कुन्तलपुर को भेजा। धीरे-धीरे चन्दनपुर की ऐश्वर्य-वृद्धि का समाचार कुन्तलपुर पहुँचा, तो धृष्टबुद्धि राज्य की सब व्यवस्था देखने के लिये बहाना कर के चन्दनपुर पहुँचा।

राजा और कुमार ने मन्त्री का धूमधाम से स्वागत किया।

पर धृष्टबुद्धि ने चन्द्रहास को तुरन्त पहचान लिया, और उसे देख कर वह जल कर खाक हो गया। उसने चन्द्रहास के मरवा डालने की एक युक्ति निकाली और एक पत्र अपने पुत्र मदन को लिखा और उसे चन्द्रहास को देकर कहा- यह पत्र बहुत महत्वपूर्ण है, इसमें दोनों राज्यों की भलाई होगी। अतः तुम स्वयं जाकर मेरे पुत्र मदन को यह पत्र देना—खबरदार, पत्र रास्ते में खुलने न पावे और न किसी दूसरे के हाथ पड़ने पावे।

मन्त्री की आज्ञा होने पर चन्द्रहास तुरन्त घोड़े पर सवार हो चल दिया। कुन्तलपुर वहाँ से दस कोस था। पहुँचते-पहुँचते दिन ढल गया। जब नगर के निकट पहुँचा, तब सोचा, थोड़ा विश्राम कर लूँ, तो नगर में चलूँ। यह सोचकर वह एक सुन्दर बाग में घुस गया। वह बाग राजा का था। वहाँ उसने स्वयं हाथ मुँह धोकर जल पिया, घोड़े को भी पिलाया। फिर रास्ते की थकान मिटाने घोड़े को एक ओर बाँध वृक्ष की छाया में लेट गया। थका तो था ही, तुरन्त नींद आ गई, और वह गाढ़ी नींद सो गया।

दैवयोग से उसी समय मन्त्री-पुत्री विषया सखियों सहित वहाँ घूमने आई। सखियाँ इधर-उधर रह गईं, और विषया उनसे भटक कर वहाँ आ पहुँची, जहाँ कुमार चन्द्रहास सो रहा था। उस सुन्दर कुमार को सोता देख वह मोहित हो गई। उसने देखा कि एक पत्र उसकी जेब में से चमक रहा है। कौतूहल-वश उस पर उसने मदन का पता तथा पिता के हस्ताक्षर देख: पत्र धीरे से

निकाल लिया और खोल कर पढ़ा—पत्र मे लिखा था कि 'इसे तुरन्त विष देदेना-कुलशील का विचार न करना।' पत्र पढ़ विषया को बड़ी चिन्ता हुई। उसने विष की जगह विषया बना दिया और पत्र उसी भांति आम के गोंद से बन्द कर वहीं रख दिया और चल कर सखियों मे मिल गई। कुछ देर मे कुमार जागकर चल खड़े हुये। नगर मे जाकर उसने पत्र मदन को दिया। पत्र पढ़कर और पुराने मित्र को पाकर मदन बहुत खुश हुआ। और उसी क्षण गोधूलि लग्न मे विषया का विवाह चन्द्रहास से कर दिया। कन्यादान के समय स्वयं कुन्तलपुर नरेश पधारे। वे भी चन्द्रहास पर मोहित हो गये, उन्होंने सोचा पुत्री चम्पक मालिनी के लिये इससे उत्तम वर और कौन मिलेगा। इसी को राजकुमारी ब्याह कर राज्य भी इसे ही दे देना चाहिये।

दो चार दिन बाद मन्त्री ने लौट कर देखा कि उसका सोचा हुआ सब चौपट हो गया है तो वह अत्यन्त क्षुब्ध हुआ, पर मन का कुभाव किसी पर प्रकट नहीं किया। उसने निश्चय किया कि कन्या चाहे विधवा हो जाय पर इस शत्रु को अवश्य मारना होगा। उसने जल्लाद को बुला कर कहा—देखो आज सन्ध्या के बाद नगर के बाहर चामुण्डा के मन्दिर मे जो कोई जाय, उसका सिर काट लेना। सन्ध्या के समय उसने चन्द्रहास से हँसकर कहा—चामुण्डा हमारी कुल देवी है, इससे आज सन्ध्या के बाद तुम उनका पूजन कर आना।

मदन कुमार ने श्वसुर की आज्ञा का पालन किया, और पूजन सामग्री लेकर चामुण्डा की मूर्ति पूजने को जाने की तैयारी करने लगा।

वह जाने ही वाला था कि मदन ने आकर कहा—तुम्हें अभी महाराज बुला रहे हैं। महल में तुम्हें अभी चलना होगा।

चन्द्रहास ने कहा—यह तो बड़ी मुश्किल है। मुझे तो अभी चामुण्डा की पूजा करने जाना है।

मदन ने कहा—चामुण्डा की पूजा मैं कर आता हूँ, तुम महाराज की सेवा में जाओ।

यह कह कर चन्द्रहास को तो मदन ने राजमहल में भेज दिया और स्वयं चामुण्डा के मन्दिर में जा पहुँचा। वहाँ घातक ने उसका सिर काट लिया।

इधर राजा ने उसी रात चन्द्रहास को अपनी पुत्री चम्पकमालिनी ब्याह दी और उससे कहा—यह राजपाट भी तुम्हीं संभालो; हम तो अब वन में जाकर तपस्या करेंगे।

प्रातःकाल धृष्टबुद्धि ने जब पुत्र की मृत्यु का और चन्द्रहास के राजा होने का हाल सुना, तो वह हाय करके रह गया, और उसने पुत्र की लाश पर जाकर तलवार से आत्महत्या करली। इस प्रकार चन्द्रहास उनकी भी सम्पत्ति का स्वामी बना और आनन्द से राज्य करने लगा।

: १६ :

गरुड़जी

सतयुग की बात है। दक्ष प्रजापति की दो कन्याएँ थीं। एक कद्रु, दूसरी वनिता। दोनों अत्यन्त सुन्दरी थी। प्रजापति ने दोनों का विवाह महात्मा कश्यप से कर दिया। कश्यप ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर कहा—यथेच्छ वर माँगो। कद्रु ने समान तेजस्वी एक हजार नाग पुत्र रूप से माँगे, और वनिता ने कहा—मुझे ऐसे पुत्र चाहियें जो तेज, विक्रम और शरीर मे कद्रु के पुत्रों से भी बढ़ कर हों। कश्यप ने दोनों को यथेच्छ वर देकर सन्तुष्ट किया। वर पाकर दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुईं। समय बीतने पर कद्रु ने एक हजार अण्डे दिये, और वनिता ने दो अण्डे दिये। दासियों ने उन अण्डों को गर्म बर्तनों मे रख दिया।

५०० वर्ष बाद कद्रु के नाग पुत्र निकले पर वनिता के दो अण्डो से फिर भी बच्चे न निकले। कुछ दिन और प्रतीक्षा कर अधीर होकर वनिता ने एक अण्डा तोड़ डाला। उसने देखा उसमे उसका पुत्र है, वह आधा तो पक गया और आधा कच्चा है। उसने क्रोध मे भरकर अपनी माता को शाप दिया कि तूने पुत्र लोभ से मेरे साथ ऐसा किया, इससे तू ५०० वर्ष तक कद्रु की दासी होकर रहेगी। परन्तु जो तू इस दूसरे अण्डे को इस तरह तोड कर अङ्ग भङ्ग न करेगी तो इससे जो पुत्र होगा वह तुझे शाप से छुड़ावेगा इसलिए तू धीरता से उसकी प्रतीक्षा कर। इतना कह कर वह

आकाश में उड़ गया ।

५०० वर्ष और प्रतीक्षा करने पर गरुड़ उत्पन्न हुआ और वह उत्पन्न होते ही क्षुधा से पीड़ित हो आकाश में घूमने लगा ।

इसके बाद एक बार ऐसा हुआ कि उन दोनों बहिनों ने अपने पास से निकलते हुए उच्चैःश्रवा अश्व को देखा, उसे देख कर कद्रू ने विनता से कहा—कहो बहिन, यह घोड़ा किस रंग का है ।

विनता ने कहा—सफ़ेद है । कद्रू ने कहा—परन्तु पूँछ काली है ।

इस पर दोनों ने विवाद किया और शर्त लगाई कि जिसकी बात सच होगी, दूसरी उसकी ५० वर्ष तक दासी रहेगी । यह तय हुआ कि कल इसे देखकर निर्णय होगा । परन्तु वास्तव में घोड़े की पूँछ काली न थी, पर कद्रू ने कपट जाल रचा और अपने पुत्रों को जो नाग थे, आज्ञा दी कि तुम काले बाल बनकर इसकी दुम से लिपट जाओ । जो मेरी आज्ञा को न मानेगा वह सर्प यज्ञ में भस्म हो जायगा ।

दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों बहिनें समुद्र पार घोड़े के पास गईं और उसके पास पहुँचीं, जब वे घोड़े के पास पहुँचीं तो देखा कि उसकी पूँछ के बाल काले थे । पूँछ के बाल काले देखकर शर्त के अनुसार कद्रू ने विनता को अपनी दासी बना लिया । इस प्रकार जुए में जीती जाकर विनता दुखित होकर दासी का काम करने लगी । कुछ दिन बाद दूसरे अण्डे को तोड़कर महा तेजस्वी गरुड़

निकल आये। इनका रूप पक्षी का था। परन्तु इनमें इच्छानुसार रूप, गमन और शक्ति थी। उसकी आँखों में अग्नि के समान तेज था, उसे देखकर देवतागण अग्नि के पास जाकर कहने लगे कि इस पक्षी के तेज से तो हम सब भस्म हो जावेंगे। इससे हमारी रक्षा कीजिये। अग्नि ने कहा—यह महात्मा कश्यप का पुत्र गरुड है। और दैत्यों तथा नागों का शत्रु और देवताओं का मित्र है। इससे भय करने की आवश्यकता नहीं है।

एक दिन वनिता अपने पुत्र गरुड के पास बैठी थी, उसे चिढाने और अपमान करने की गरजसे कद्रू ने बुलाकर कहा—तुम जरा मुझे अपनी पीठपर बैठाकर समुद्र की खाड़ी में जहाँ नागो का निवास है, ले चलो। लाचार वनिता ने कद्रु को अपनी पीठ पर लादा और माता के कहने से गरुड़ ने भी सर्पों को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। इससे गरुड को बड़ा क्रोध आया। वह उडकर सूर्य के निकट चला गया, जिससे सब नाग जलकर बेहोश होगये, यह देख कद्रूने इन्द्र की प्रार्थना की जिससे उसने वर्षा करके नागों को सतुष्ट किया। इस प्रकार नाग और उनकी माता उस द्वीप मे जा पहुँचे, जहाँ नाग रहते थे। सब नाग वहाँ मिलकर जब खूब विहार कर चुके तब गरुड़ से बोले—अब तू हमे किसी और सुन्दर लोक मे ले चल जहाँ हम अच्छी तरह विहार करे। यह सुन गरुडजी बडी चिंता मे पडे और अपनी माता से कहने लगे, क्या कारण है जो मुझे सर्पों की आज्ञा पालन करनी पड़ती है।

विनता ने कहा—पुत्र, मैं सौत से जुए में हारकर उसकी दासी बन गई हूँ। उसने सर्पों से छल कराकर दाव जीत लिया है। यह सुनकर दुखी होकर गरुड़ ने सर्पों से कहा—क्या लेकर तुम हमें दासत्व से छुटकारा दिला सकते हो? सर्पों ने कहा—कि तुम जा सको तो हमें अमृत ला दो, तब तुम्हारा इस दासभाव से छुटकारा हो सकता है। यह सुनकर गरुड़ ने माता से कहा—मैं अमृत लेने देवलोक जाता हूँ मुझे कुछ खाने को दो। विनता ने कहा—समुद्र के उस ओर निषाद रहते हैं। उन्हें खाकर तुम अमृत ले आओ। पर खबरदार कभी ब्राह्मण को मत खा जाना। गरुड़ ने कहा—मैं ब्राह्मण को कैसे पहचानूँगा। तब विनता ने कहा—तेरे कण्ठ में पहुँचकर निगलने के समय जो मछली के काँटे की तरह अटक जाय या अङ्गारे के समान कण्ठ को जलाने लगे और पेट में पचे नहीं, उसे तू फौरन ब्राह्मण समझ लेना। जा! तेरा कल्याण हो।

यह सुनकर गरुड़ पंख फैलाकर आकाश को उड़ गया। वह बहुत भूखा था सो तुरंत ही निषादों के पास जाकर उनका संहार करने लगा और उसने पेट भर कर निषादों का भक्षण किया। इन निषादों में एक ब्राह्मण भी अपनी पत्नी समेत गरुड़ के मुँह में चला गया। इससे उसका कंठ जलने लगा तो गरुड़ ने कहा—तू निकल आ मैं ब्राह्मण को नहीं मारता। ब्राह्मण अपनी ब्राह्मणी के साथ बाहर निकल आया। इसके बाद गरुड़ फिर आकाश को उड़ गया। मार्ग में गरुड़ ने अपने पिता कश्यपजी को देखा। उन्होंने

पूछा—पुत्र ! तुम कहां चले । कैसे हो ? गरूड़ ने सब हाल व्यौरे-वार सुना दिया परन्तु भोजन के विषय मे कहा—मेरे भोजन का ठीक-ठीक अभी कुछ नही है । अभी तो मै अमृत लेने देव लोक जाता हूँ । जिससे माता का दासीभाव छुटे । मैंने हजारों निषादों का भक्षण किया परन्तु मेरा पेट नही भरा अब आप ही कोई भोजन बताइये जिससे भूख-प्यास मिटाकर मैं अमृत ला सकूँ ।

कश्यप पुत्र की बात सुनकर बोले—इस तालाब मे यह कछुआ और हाथी परस्पर के द्वेष से युद्ध कर रहे है । यह दोनों मूर्ख—सुप्रतीत और विभावसु नामक दोनों भाई हैं । जो एकदूसरे के शाप से हाथी और कछुआ बन गये हैं सो तुम इन दोनों का भक्षण कर डालो—यह कछुआ महामेघ के समान तथा हाथी महा पर्वत के समान है । इन्हे भक्षण करके अमृत ले आओ ।

बस गरुड़ उडा तो झट उस तालाब पर आया और एक पंजे मे हाथी को तथा दूसरे में कछुए को पकड लिया और उन्हें लेकर अलम्ब तीर्थ मे पहुँचा । और रोहिण महा वृक्ष पर बैठकर हाथी और कछुए को खाने लगा । परन्तु उसके बोझ से वृक्ष की वह शाखा टूट गई । उसी शाखा में नीचे मुँह किये बालखिल्य ऋषि तप करने को लटक रहे थे । इन ऋषि को कहीं चोट न लग जाय इस भय से गरुड ने दोनों पँजों मे हाथी और कछुए को पकडते हुए चोंच से वह शाखा पकडली और ऋषि को कष्ट न हो इस विचार से धीरे-धीरे उड़ने लगा । वह उन्हे लिये बहुत सी जगहों

ललकार कर कहा—खबरदार गरुड अमृत न ले जाने पावे। बृहस्पति ने कहा—गरुड महाबली है, देवता उससे युद्ध मे जय नहीं पा सकते। फिर भी देवता अमृत को घेर कर बैठ गये। इन्द्र भी वज्र ले अमृत की रक्षा करने बैठ रहे। देवताओं ने बड़े बड़े हथियार लिये। इतने में ही देवताओं के पास पक्षिराज गरुड जा पहुँचे। अब अमृत के लिये घन घोर युद्ध होने लगा। गरुड़ ने देवताओं को चीर-फाड़ कर घायल कर डाला और युद्ध मे गरुड़ के पंखों से इतनी धूल उडी कि इन्द्र ने वायु को आज्ञा दी कि तुम धूल की वर्षा को दूर ले जाओ। जब वायु ने धूल को हटा दिया और अंधकार नष्ट हुआ तब देवता फिर गरुड़ पर प्रहार करने लगे। क्रोध मे आकर गरुड जोर से गर्जने लगे और ऐसे वेग से आक्रमण करने लगे कि देवता घबरा कर भाग निकले। गरुडजी अमृत को लेकर चल दिये। यह देख अग्नि ने हजारों मुख से अमृत को ढक लिया। परंतु गरुडजी ने नदियों की जल धार से वह आग बुझादी।

अन्त मे वे अमृत का कलश लेकर चल दिये। आकाश मे विष्णु जी से भेंट हुई। उन्होंने कहा—मैं तुम से अत्यन्त प्रसन्न हूँ क्योंकि तुमने अमृत स्वय नहीं पिया; तुम वर माँगो। गरुड़ ने कहा—मुझे आप अपनी ध्वजा मे स्थान दीजिए और वर दीजिए कि विना ही अमृत पीये अजर अमर रहूँ। विष्णु ने कहा—तथास्तु। फिर गरुड़ ने कहा—आप अब मुझ से वर माँगिये।

विष्णु ने हँसकर कहा—अच्छा मान है, तुम मेरे वाहन बनो।

इसके बाद गरुड़ आगे उड़े। तब इन्द्र ने क्रोध में आकर उस पर वज्र मारा। गरुड़ने हँसकर कहा—मैं वज्र का और तुम्हारा सम्मान करने के लिये अपना एक पर गिराये देता हूँ।

यह देख इन्द्र ने आश्चर्य करके कहा—हे पक्षिराज, तुम्हारा बल आश्चर्यजनक है। मैं तुमसे मित्रता चाहता हूँ।

गरुड़ ने कहा—अच्छा, मुझे भी आपसे मित्रता स्वीकार है।

इन्द्र ने कहा—यदि अमृत से आपका कोई काम नहीं है तो उसे मुझे लौटा दीजिए। आप नागों को यह अमृत देना चाहते हैं इसे पाकर वे हमें कष्ट देंगे।

गरुड़ ने कहा—मैं तो अपने किसी मतलब से ही अमृत को लिये जा रहा हूँ, पर किसी को पीने न दूंगा। इससे मैं इसे जहाँ रखता हूं वहाँ से तुम उठाकर फौरन भाग जाना। इस पर इन्द्र राजी होगये। इतना कह गरुड़ अपनी माता के पास आए। और कहा—अरे, नागो! मैं अपने वचन के अनुसार अमृत ले आया हूँ। अब आज से मेरी माता तुम्हारी दासी नहीं है, यह अमृत रखा है, तुम स्नान मंगलाचरण करके इसका पान करो। यह कहकर उसने वह कलश कुशा पर रख दिया। नाग लोग स्नान आदि को चल दिये। उधर अवसर पा इन्द्र कलश उठा अपने रास्ते लगा। सर्प देखते ही रह गये। और कुशा को चाटने लगे जिससे उनकी जीभ चिर गई।

इस प्रकार गरुड़ ने अपनी माता को दासीपनसे मुक्त किया।

: १७ :

ध्रुव

महाराज मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद के दो रानियाँ थीं, बड़ा रानी का नाम सुनीति, और छोटी का सुरुचि था। सुनीति के बेटे का नाम ध्रुव और सुरुचि के बेटे का नाम उत्तम था। महाराज उत्तानपाद छोटी रानी को ज्यादा प्रेम करते थे, सारा अधिकार छोटी रानी के ही हाथमे था। बडी रानी और उसका पुत्र उपेक्षित रूप से उस घर में, छोटी रानी के आश्रित बन कर रह रहे थे। रानी तो समझदार थी, राजा को छोटी रानी के चंगुल मे फँसा देख-कर उस घर के अन्दर अपना स्थान समझ गई थी, इसलिये घर-गृहस्थी के झगडों को छोड़ अपने दिन पूजा-पाठ मे व्यतीत करती थी। वह किसी बात मे दखल देना या अपने अधिकारों के लिये लड़ना-झगड़ना पसन्द न करती थी। वह समझती थीं, कि जब राजा ने ही छोटी रानी के प्रेम मे आसक्त होकर न्याय अन्याय का विचार करना छोड़ दिया है तो व्यर्थ घर में अशान्ति करने तथा अपने को और अपमानित करने से क्या फ़ायदा है।

ध्रुव नासमझ बालक था, वह यह सब बातें समझता न था वह समझता था जैसा उत्तम वैसा ही मैं। राजा जैसे उत्तम के पिता वैसे मेरे पिता, वह हमेशा उत्तम की बराबरी किया करता था। छोटी रानी यह बर्दाश्त नहीं कर सकती थी कि वह मेरे बेटे की बराबरी करे। अक्सर वह उसे फटकार देती थी, जिससे

वह माँ के पास रोता हुआ जाता था, माँ के पूछने पर, बच्चे के साथ भी छोटी रानी का यह व्यवहार हृदय पर बड़ी चोट लगती थी, किन्तु बच्चे के सामने अपना दुःख प्रगट नहीं करती थी, कि कहीं बच्चे के छोटी रानी तथा अपने पिता के प्रति विरक्ति न हो जाये। वह हमेशा बच्चे का दोष निकाल उसे समझा दिया करती थी। इसी प्रकार दिन बीतते जा रहे थे, छोटी रानी और उत्तम के सुख में, और बड़ी रानी और ध्रुव के दुःख में।

अब ध्रुव पहले से कुछ समझदार होगया था। वह कुछ कुछ अपनी माँ के दुःख को समझने लगा था. वह अपनी छोटी माँ के सामने बड़ा चौकस रहता और ख्याल रखता था कि उनकी मर्जी के खिलाफ कोई बात न हो जाय जिससे वह नाराज हों।

एक दिन राजा उत्तानपाद राजसभा में अपनी गद्दी पर बैठे थे। खेलते हुए उत्तम और ध्रुव वहाँ आगये, उत्तम जाकर पिता की गोद में बैठ गया। उत्तम को गोद में बैठा हुआ देख ध्रुव का मन भी पिता की गोद में बैठने को ललचाया, छोटी रानी के क्रोध को भूल वह भी पिता की गोद में जा बैठा। इतने में सुरुचि वहाँ आ गई। ध्रुव को पिता की गोद में बैठा देख उसके नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी उसने ध्रुव की बांह पकड़ ढकेल दिया और बोली— यह गोद तेरे बैठने के लिये नहीं है, तेरा जन्म दूसरी माता की कोख से हुआ है। यह मेरे बच्चों के लिये है। अगर तुझे इस गोद में बैठने की आकांक्षा है तो जा तपस्या कर और उस जन्म

में मेरी कोख से जन्म ले तब यह गोद प्राप्त कर सकेगा। बालक बड़ा अप्रतिभ हुआ, वह इस प्रकार भाई और पिता के सामने अपने ही पिता की गोद मे बैठने के कसूर मे अपना, और अपनी माता का इतना बडा अपमान सह न सका। वह अपनी मां के पास जा सिसक-सिसक रोने लगा, मां के पूछने पर उस ने सारा किस्सा कह सुनाया-कि पिता की गोद मे बैठने पर छोटी माँ ने मेरा इस प्रकार तिरस्कार किया। इस मे मेरा क्या कसूर था? क्या वे उत्तम के समान मेरे पिता नही हैं, उत्तम भी तो गोद मे बैठा था। उसे तो किसी ने कुछ नही कहा।

बेटे की बात सुनकर सुनीति अपने आंसुओं को न रोक सकी, मां-बेटे दोनों एक दूसरे से चिपट कर रोने लगे, कुछ देर रोकर जब उनका जी कुछ हल्का हुआ तो सुनीति हमेशा के समान उसी को दोषी न बना सकी अब ध्रुव सात वर्ष का बालक होगया था, दोष किसे कहते है वह अब समझने लगा था, रानी ने भी समझा अब उसे भुलावे मे नही रक्खा जा सकता। आखिर उसे सत्य बात बतानी पड़ी। उसने कहा—"हे पुत्र! यह सत्य है, तू ने पूर्व जन्म मे कोई पाप किया था जिस से कि तूने मुझ अभागिनी के कोख से जन्म लिया, मैं पूर्व जन्म के पाप के कारण पति की उपेक्षिता हूँ। और छोटी रानी सुरुचि को पूर्व जन्म के पुण्य के कारण पति का प्रेम और आदर मिला है, उत्तम ने सुकर्म किया था, जिस से उसने सुरुचि के पेट से जन्म लिया। इस कारण वह पिता के

पूर्ण प्रेम का अधिकारी हुआ और तू उत्तम के समान ही उनका पुत्र होते हुये भी मुझ उपेक्षिता का बेटा होने के कारण उनके प्रेम का अधिकारी नहीं। अस्तु तुम्हें संतोष करना चाहिए। जो प्रारब्ध में होता है वही मिलता है। अगर तुम्हें अपनी इस दशा पर बहुत दुःख है तो तप करो, तथा ईश्वर की आराधना करो। तो तुम पिता की गोद क्या उस परम पिता की गोद में बैठ सकोगे जिस के लिये ऋषि-मुनि तरसते हैं।

बालक ध्रुव के हृदय में माँ की बात बैठ गई, उसने कहा— "अच्छा माँ मैं उस परम पिता की गोद ही प्राप्त करूँगा; उत्तम पिता की गोद और पिता के राज्य का पूर्ण अधिकारी हो, मैं उसमें हिस्सा नहीं बटाना चाहता। मैं ऐसी अनूठी चीज प्राप्त करूँगा जो मेरे पूज्य पिता और बड़े बड़े ऋषि-मुनियों को भी प्राप्त नहीं हो सकी।" यह कह कर वह जंगल में तपस्या करने चला गया।

सात वर्ष का बालक जिसने महल के फर्श से नीचे जमीन में शायद पैर भी न रक्खा हो, पचासों दास-दासियाँ उसकी सेवा में हाजिर रहते होंगे, वह पैदल ही अकेले बियाबान जंगल में नदी नालों को पार करता हुआ चला जा रहा था, उसे न धूप की चिंता थी न भूख की। काँटों से उसके पैर और शरीर लहू-लुहान हो रहे थे। धूप के कारण उसका शरीर झुलस रहा था। सेरों धूल उसके शरीर में लगी हुई थी। किन्तु वह तो अपनी धुन में अनूठा पद प्राप्त करने के ध्यान में चला जा रहा था। उसे और किसी बात

पर ध्यान देने की फुर्सत कहाँ थी। उस धुन में न उसे भूख थी, न प्यास, न नींद, न आराम का ख्याल। चलते-चलते जंगल में उसे सात ऋषि-गण मिले। उनसे ध्रुव ने अपनी सब व्यथा कही और उन से सहायता मांगी। मारीच नामक ऋषि ने उससे कहा—हे राजकुमार! जो अविनाशी परमात्मा की अराधना करते हैं उन्हे ऊँचा स्थान प्राप्त हो सकता है। इसलिये अविनाशी परमात्मा की अराधना करो तो तुम ऊँचा स्थान प्राप्त करसकोगे। इसीतरह प्रत्येक ऋषि ने उसे पर ब्रह्म-परमेश्वर की आराधना ही करने को कहा। तदुपरान्त ध्रुव ने उनसे आराधना करने की रीति बताने की प्रार्थना की। ऋषियों ने उसको इसकी यथेष्ट रूप से शिक्षा दी। तब वह घनघोर जँगल मे जाकर ऋषियों की बताई हुई रीति के अनुसार तपस्या करने लगा। उसके आसपास शेर-चीते तथा अन्य जानवर दहाड़ते थे। किन्तु वह तो परमेश्वर के ध्यान मे मग्न था। उसे किसी बात की भी चिन्ता न थी।

जब उसके माता पिता के कान मे उसके तपस्या करने की बात पहुँची तो वे उसके पास पहुँचे और उससे प्रार्थना की कि घर चलो, अभी तुम्हारी उमर तपस्या करने की नहीं है। उस ने कहा—परमात्मा की आराधना करने के लिये कोई भी निश्चित उमर नहीं होती, जब उसकी आराधना करनेके लिए हृदय में ज्ञान हो तभी उसकी आराधना करनी चाहिए, उसके लिए न कोई समय है और न अवस्था।

यह सुन के निरुत्तर हो गये। उनकी माता सुनीति रोने लगी और कहने लगी बेटा! तेरे बिना मैं कैसे रहूँगी। उसने माता को भी बहुत उपदेश दिया और कहा—मैं ईश्वर को प्रसन्न कर तेरे पास जल्दी ही आऊँगा। तुझे तो और भी प्रसन्न होना चाहिये। तू तो बुद्धिमती है। तेरे ही उपदेश से तो मुझे ज्ञान हुआ। तू ही अधीर होगी तो कैसे बनेगा? अन्त, राष्ट्रों के लिये बुद्धिमती और वीर मातायें अपने पुत्रों को शुभकर्मों से नहीं रोकतीं। सुनीति भी निरुत्तर हो गई और आशीर्वाद दिया—तेरी मनोकामना ईश्वर जल्द सफल करे। उसके बाद सुरुचि ने भी क्षमा मांगी, उसे भी उदार हृदय से क्षमा दान देकर उसने विदा लिया।

वह ७ दिन लगातार दिन-रात बिना खाये-पीये समाधिस्थ हो बैठा रहा, बहुत सी विघ्न-बाधा, प्रलोभन देवताओं ने पहुँचाई, किन्तु वह किसी भी प्रकार विचलित नहीं हुआ। अंत में भगवान प्रसन्न हो उस के पास आये और पूछा—"तुझे क्या चाहिये?"

उस ने कहा—भगवान मैं मूढ़ बालक हूँ, आप ऐसा वर दीजिये, कि मैं आपकी स्तुति कर सकूँ।

उन्होंने उसके हृदय से अज्ञान का पर्दा हटा दिया। सरस्वती उसकी जिह्वा पर विराजमान हो गई। वह भगवान की स्तुति कवित्वमय संस्कृत भाषा में करने लगा।

भगवान ने फिर पूछा—बता अपनी मनोकामना।

उसने कहा—आप अन्तर्यामी हैं। आप तो सबके मन की

बात जानते है।

भगवान ने कहा—अच्छा जा, तू लोकमे ध्रुव नक्षत्र के नाम से विख्यात होगा और तेरे पास ही तेरी माँ भी तारा बनके रहेगी। यह वचन दे वे चलने लगे तो उसने फिर पैर पकड़ लिये।

उन्होंने पूछा—अब क्या चाहता है।

उस ने कहा - भगवान, जब आपने मेरे ऊपर इतनी कृपा दिखाई है तो उन सातों ऋषियों के लिये भी कुछ कीजिये जिनकी बदौलत आपकी आराधना करने की बुद्धि मुझे आई।

भगवान ने कहा—जा, तेरी यह मनोकामना भी पूरी होगी। यह तेरे पास ही सप्तर्षि के नाम से मशहूर होंगे। यह कह कर वे अंतर्धान हो गये।

वह भी वरदान ले अपनी मां के पास लौट आया। उसके बाद से उसकी छोटी माँ का भी स्वभाव बदल गया, उसकी माँ का भी आदर उस घर मे होने लगा, और समय पर उत्तानपाद ने उसी को राजा बनाया। वह बहुत दिन तक राज्य भोग कर अपने लोक को चले गये, हजारों वर्ष बीत जाने के बाद भी रात को उत्तर दिशा मे ध्रुव तारा चमकता है और उसके पास ही उसकी माँ और सप्तर्षि भी।

: १८ :

गुरुभक्त मोहन

एक छोटे से गाँव में एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी, वह बहुत गरीब थी, उसका एक छोटा सा पुत्र था। ब्राह्मणी दो-चार घरों से आटा माँग कर बालक का पालन-पोषण करती थी। यदि किसी दिन थोड़ा कम मिलता तो ब्राह्मणी स्वयं भूखी रह कर बच्चे को खिला-पिला कर सो जाती। गाँव में अनेक धनी-मानी आदमी थे पर उस गरीब ब्राह्मणी की किसी को परवाह न थी।

जब बालक ६ वर्ष का हुआ तब ब्राह्मणी को बालक के पढ़ाने की फिक्र हुई। गाँव में तो गरीब के बेटे को छोड़कर सभी बालकों पढ़ाते थे। बेचारी ब्राह्मणी ने दूसरे गाँव में जाकर एक विद्वान् ब्राह्मण से अपना दुखड़ा रोया। ब्राह्मण को दया आ गई और उन्होंने बालक को पढ़ाना शुरू कर दिया। बालक पढ़ने को जाने लगा। गाँव वहाँ से दो कोस था, पर बेचारा बालक नित्य सवेरे दो रोटियाँ बगल में दबा कर गुरुजी के पास पढ़ने जाया करता। रास्ते में जंगल पड़ता था, और जब कभी लौटने में देर हो जाती थी तो अन्धेरा हो जाने से बालक को बहुत डर लगता था।

एक दिन गुरुजी के घर कोई उत्सव था, इससे उस दिन बालक को लौटने में बहुत देर हो गई। अन्धेरी रात थी, जंगल में जानवरों की डरावनी आवाजें आ रही थीं। यह सुनकर बालक डर से थर-थर कांपने लगा। उधर ब्राह्मणी भी देर होती देख, पुत्र

को ढूँढने निकली। जब बालक घर आया तो बहुत डरगया था। माता ने दुखी होकर कहा—पुत्र, दरिद्र होने के कारण ही तुझे यह कष्ट भोगना पडता है। हमारा कोई भी तो आसरा नही है।

बालक ने कहा—माँ, क्या हमारा कोई आसरा नहीं है?

ब्राह्मणी ने आँखों मे आँसू भर कर कहा—सिर्फ उस भगवान् का आसरा है? बालक ने पूछा—माँ, भगवान रहते कहाँ हैं? मुझे बताओ, मै उनसे कहूँगा, हमे एक नौकर चाहिये जो मेरे साथ पाठशाला जाया करे।

ब्राह्मणी ने कहा—पुत्र, भगवान सर्वत्र है, सच्चे मन से जो उनका ध्यान करता है उसी को मिल जाते है और उसका सब काज साध लेते है। माता की यह बात सुनकर बालक के मन पर भगवान की बडी श्रद्धा हो गई।

कुछ दिन बाद, बालक के गुरु के पिता का देहान्त हो गया। उनके श्राद्ध का आयोजन हुआ, सभी विद्यार्थी कुछ न-कुछ भेंट लाये। बालक ने माता से कहा—कि हमे भी कुछ भेंट गुरुजी को देनी होगी। ब्राह्मणी ने कहा—तू गुरुजी से पूछना कि मैं क्या भेंट लाऊँ। वे हमारी दशा जानते है जो ठीक समझेंगे वही जवाब देंगे।

बालक ने गुरुजी से पूछा—गुरुजी, मुझे क्या आज्ञा है, मैं क्या भेंट लाऊँ।

गुरुजी ने कहा—तुझे कुछ नहीं लाना होगा, हम तुझसे

बहुत प्रसन्न हैं ।

बालक ने कहा—नहीं, जब सब बालक कुछ-न-कुछ भेंट लाये हैं तब मुझे भी कुछ लाना ही चाहिये ।

गुरुजी ने हँसकर कहा—अच्छा तू एक लोटा दूध ले आना ।

घर आकर बालक ने कहा—माँ, गुरुजी के लिये एक लोटा दूध देना होगा । उसका क्या बन्दोबस्त होगा ।

ब्राह्मणी ने कहा—न हमारे यहाँ गाय है, न पैसे हैं कि मैं दूध खरीद दूँ । न हमें कोई उधार ही दे सकता है—और बाजार से दूध मोल लाने के लिये कोई लुटिया भी तो नहीं है ।

बालक रोने लगा । उसने सोचा—अब मैं कैसे गुरुजी को मुँह दिखाऊँगा, मैंने ही तो ज़िद करके कुछ भेंट लाने को कहा था ।

ब्राह्मणी ने कहा—बेटा, फ़िक्र न कर, भगवान को जो मंजूर होगा, वही हो जायगा ।

प्रातःकाल ब्राह्मणी कई घर दूध माँगने गई—पर किसी ने भी उसे दूध नहीं दिया । वह निराश हो लौट रही थी कि इतने में एक गरीब ग्वाले ने कहा—दूध का क्या करोगी ।

ब्राह्मणी ने सभी कथा कह सुनाई, ग्वाले ने दया कर दूध से लुटिया भर दी । जिससे बालक प्रसन्न मन गुरुजी के पास चला गया । उसे इस भक्ति से दूध लाते देख गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए और उसे अत्यन्त स्नेह से पढ़ाने लगे । कुछ दिन में वही बालक महा-विद्वान हो गया ।

: १९ :

फत्ता सिसोदिया

जिस समय प्रतापी सम्राट अकबर ने चित्तोड़ पर चढ़ाई की और महाराणा उदयसिंह चित्तौड छोडकर पहाडों मे चले गये— तब किले की रक्षा का भार जयमल राठौर पर आ पड़ा—वह भी एक दिन किले की रक्षा करते हुए बादशाह को गोला के शिकार हुए, तब किले की रक्षा का भार फत्ता सीसोदिया पर पड़ा जो उस समय सिर्फ १७ साल का बालक था।

अकबर बादशाहने अजेय चित्तौड़के किले को फतह होता हुआ न देख, सुरंगे लगाकर किले की दीवार उड़ाने का प्रबन्ध किया था। परन्तु सुरंगे बनानेको किसीभी तरह मजदूर नहीं मिलता था। बादशाहने एक मजदूरको मजदूरी एक अशर्फी कर दी थी—जो वास्तव मे उसकी जान का मोल था। क्योंकि किलेपरसे जो अचूक गोली बरसती थी उसकी बौछारोंसे मजदूर पटा-पट मरते थे। और कोई उपाय कारगर न होता था। सुरग के दोनो ओर का स्थान लाशोंसे पटगया था। परन्तु अन्त मे तीन सुरंगे कामयाब हुई और दीवार तक आ पहुँची। एक मे बत्ती दिखाई गई और वह एक दीवार को लेकर जिस पर बहुत से राजपूत लड़ने को तैयार खड़े थे उड़ गई, और दीवार मे दरार होगई। दरार होते ही मुगलों की फौज किले मे घुस पडी। इतने ही मे दूसरी सुरंग भी उड़ा दी गई, जिससे वह शाही सेना भी उड गई। इस गड़-बड़ी से अकबर बहुत झल्लाया।

अब तीसरी सुरंग भी उड़ाई गई। इस प्रकार किले की दीवारें भंग होने से शत्रु किले में घुस गये। उन्होंने किले में घुसते ही मार-काट मचा दी। चारों ओर हाहाकार मच गया। सब लोग प्राणों का मोह छोड़, लड़ने मरने को तैयार हो गये। राजपूतों ने बढ़-बढ़ कर हाथ मारना शुरू किया। घमासान युद्ध शुरू हो गया। तलवारें झनझना उठीं, तीरों की वर्षा भालन-बाणों की झड़ी की भाँति होने लगी। बन्दूकों की धाँयकार, घायल-पशुओं और हाथियों की चिंघाड़ ने भयानक शब्द उत्पन्न कर दिया। मुगल अल्लाहो-अकबर और राजपूत जय श्री एकलिंग का घोष करके बढ़-बढ़ कर हाथ मारने लगे। किला सब तरफ से भंग हो चुका था। शत्रु-सैन्य नई-नई टिड्डी दल की भाँति घुसती चली आती थी, और राजपूत पल-पल में घट कर क्षीण हो रहे थे जो लोग कट कर गिरते थे, वे बचे हुओं को वीरता प्रदर्शन करने का बढ़ावा देते थे।

किले में पहिले ही बहुत से राजपूत मर चुके थे और रसद की कमी होने से जो बाकी बचे थे—वे कमजोर तथा रोगी हो रहे थे। परन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। १७ साल का फत्ता सिसोदिया उनका सरदार बना और सब राजपूत मरने-मारने के लिये तैयार हो गये।

वीर फत्ता ने ललकार कर कहा—कुछ पर्वा नहीं। बादशाह ने पत्थर की दीवारों को सुरंग से उड़ाया है पर अब राजपूतों की छातियाँ ही दीवारें बनेंगी। और वे सब नगी तलवारें

लेकर पंक्ति बाँधकर खडे हो गये ।

जब बादशाह ने वीर राजपूतों को छाती की दीवारें बनाकर खडे देखा तो हुक्म दिया, इन पर मस्त हाथी हूल दिये जाय ।

थोड़ी ही देर मे सैकडों मस्त हाथी किले मे झूमने लगे । उन की सूँडों से खाँडे बांध दियेगये थे । जिन्हे घुमा घुमा कर वे नर सहार करने लगे । पर वीर राजपूत इन काली बलाओं से भी उसी प्रकार लडने लगे,किसीकी सूँड काटते, किसीका दाँत पकड कर उखाड़ते और किसीकी आँख फोड़ते । वीर राजपूतों की यह वीरता देखकर बादशाह दंग रह गया । उसनेऔर भी खूनी हाथी किले मे छुडवा दिये । औरवे झूम-झूम कर नर-संहार करने लगे। फत्ता की वीरता सबसे बढ़ी-चढीथी जो मस्तहाथी सैकडों आद-मियों को मार चुका था—वह अपनी तलवार लेकर उसकी ओर लपका—दुर्दान्त हाथी ने उसे सूँड में लपेट लिया । परन्तु वीरने हिम्मत न हारी । हाथ बढाकर एक तलवार का भरपूर हाथ दिया, जिससे उसकी सूँड कट कर गिर पडी—परन्तु उस भयानक हाथी ने वेदना से चिंघाड कर वीर फत्ता को पैरों से रौंद डाला । इस प्रकार इस वीर बालक का अन्त हुआ ।

बादशाह अकबर ने इसकी वीरता पर मुग्ध होकर आगरे के किले में उसकी मूर्ति हाथी पर बनवा कर रखी थी ।

पाँच पाण्डव

महाभारत के वीर नायक पाँच पाण्डवों का वर्णन सभी जानते हैं। ये पाँचों भाई महाराज पाण्डु के धर्मपुत्र थे। किसी विशेष कारण से महाराज पाण्डु अपनी पत्नियों में गर्भाधान नहीं कर सकते थे। इस कारण इन पाँचों भाइयों की उत्पत्ति नियोग विधि से हुई थी। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन कुन्ती के पुत्र थे जो श्रीकृष्ण की सगी बुआ थीं, और नकुल, सहदेव माद्री की सन्तान थे जो मद्र देश के प्रतापी राजा शल्य की बहिन थी—और जिसे भीष्म पितामह अनगिनत धनरत्न चुका कर ले आये थे।

पाँचों पाण्डव हिमवन्त पर्वत पर रहकर कुछ ही दिनों में वीर्य-शाली, सदाचारी और चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन तथा सिंह के समान प्रिय-दर्शी महाधनुर्धारी हुए। वनवासी और तपस्वी बालक पाण्डवों का पराक्रम देख प्रसन्न होते थे। कुछ दिन बाद अक-स्मात् महाराज पाण्डु मर गये और उनकी पत्नी माद्री उनके साथ सती हो गई। अब पाँचों पाण्डव बालकों के पालन-पोषण करने का भार बेचारी कुन्ती पर ही आ गया। पाण्डु महाराज का अशौच पूरा होने पर सब लोग हस्तिनापुर आकर रहने लगे।

अब धृतराष्ट्र के सौ पुत्र, जो कौरव नाम से प्रख्यात थे, उनके साथ-ही साथ पाण्डव भी शिक्षा पाने, खेलने और आनन्द करने लगे। परन्तु पाण्डव हर बात में कौरवों से तेज़ थे। दौड़ने, निशाना लगाने, खाने-पीने, आदि में भीमसेन सब से बाजी ले

जाते थे। धृतराष्ट्र के पुत्रों को सब बातों मे नीचा देखना पड़ता था। कभी भीमसेन खेल-ही-खेल मे उनके सिर पकड कर परस्पर टकरा देते। वे सौ होने पर भी अकेले भीम से पेश न पा सकते थे। महाबली भीमसेन उनके बाल पकड़ कर उन्हे धरती पर पटक देते, और घसीट ले जाते थे। किसी की जाँघ मे, किसी के कन्धे में और किसी के पेट मे चोट आ जाती थी—इस प्रकार सदैव यही उपद्रव बना रहता था। वे बहुधा उन्हे पानी के भीतर ले जाकर गोता लगा जाते थे और उन्हे बेदम करके छोड़ते थे। जब कौरव फल तोड़ने वृक्ष पर चढते तो भीमसेन लात मार कर पेड़ों को हिला देते जिससे वे नीचे गिर पड़ते थे। भीमसेन के ये सब काम दुष्ट बुद्धि से नहीं, बाल-चापल्य के कारण ही होते थे फिर भी उनका यह कौतुक देख कौरवों के मन मे भीमसेन के प्रति विद्वेष के भाव पैदा होगये और उनके मन मे शत्रुता बढने लगी। वे भीमसेन का बुरा सोचने लगे। अब उन्होंने यह सोचा कि मौका पाकर उन्हे गंगा मे डुबो दिया जाय। बाद मे—अर्जुन और युधिष्ठिर को कैद करना आसान हो जायगा।

एक दिन दुर्योधन को इसका एक सुयोग भी मिल गया। उसने गंगा तट पर जल-विहार का ठाटदार सरंजाम किया। वहाँ डेरे तम्बू लगाए और खाने-पीने के बहुत से सामान जोड़ कर रसोई बनाने की आज्ञा दी और आप स्वयं जल विहार करने लगे। जब सब काफी जल-विहार कर चुके तो भोजन करने बैठे। और एक- सरे

कौतुक में और दूसरे परस्पर प्रेम प्रकट करने लगे। इस अवसर पर दुर्योधन ने भीमसेन के लिये विष मिले लड्डू बनवाये और वे उन्हें खिला दिये। भीमसेन सब जानते हुए भी वह विष-युक्त लड्डू खा गये। शाम को जब सब लोग घर लौटे तो विष के प्रभाव में भीमसेन बेहोश होकर वहीं पड़े रह गये। दुर्योधन ने अवसर पा चुपके से उनके हाथ-पाँव बाँधकर गंगा में फेंक दिया। गंगा में गिरते ही वे सीधे नाग लोक चले गये—वहाँ हजारों नाग उनसे लिपट गये और काटने लगे। उनके विष से दुर्योधन का विष जल गया और भीमसेन होश में आ नागों को पटक कर मारने लगे।

तब, सब नाग भयभीत होकर भागकर वासुकी के पास जाकर कहने लगे कि इस प्रकार एक मनुष्य नागलोक में आया है जिस पर हमारे विष का कोई प्रभाव ही नहीं हुआ। वासुकी ने जाकर देखा-उसके साथ आर्यक नाग भी था- जो कुन्ती के पिता शूरसेन का नाना था। उसने पहचान कर कहा—अरे यह तो मेरे नाती का नाती है। बस भीमसेन की खूब आवभगत हुई। नागों ने उसे अनेक धन रत्न दिये तो उसने कहा—नागो! मुझे धन-रत्न की क्या कमी है। मुझे तो आप कुछ अलभ्य वस्तु दीजिये। तब नागों ने उसे कुण्ड से रस पीने की आज्ञा दी। उस रस को भीम ने छक कर पिया। इससे उसके शरीर में १० हजार हाथियों का बल आ गया। फिर वे सुख से नागलोक में सो गये।

अब उधर, जब पाण्डव घर लौटे तो भीम की याद आई।

भीम को न पाकर खोज-ढूँढ मे लग गये । दिखाने के लिये कौरवों ने भी बहुत हाय तोबा की । कुन्ती ने कहा—दुष्ट कौरवों ने अवश्य भीम को मार डाला है । उसका पता लगाओ । तब सबने विदुरजी को बुला कर पूछा—आपकी राय मे क्या करना चाहिये ।

विदुर ने कहा—चिन्ता मत करो, भीमसेन आप आ जायगा । चुप-चाप घर बैठो । उधर, भीमसेन आठ दिन तक सोते रहे । आठ दिन सोने के बाद जब उनकी आँख खुली, तब नागों ने कहा—नाग लोग का रस पीकर तुम महा अजेय और वीर हो गये । अब तुम पाताल गगा मे स्नान कर अपने घर जाओ ।

बस, भीमसेन ने स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहने और दिव्य भोजन डटकर खाया । फिर दिव्य वस्त्राभूषण पहन तथा विषहर औषधि खाकर नागों का आशीर्वाद लेकर अपने लोक को चले, और झटपट गंगा में उसी उपवन पर आ पहुँचे ।

भीमसेन को आया देख उनकी माता तथा भाई अत्यन्त प्रसन्न हुए । और वे सब गले लग कर मिले । सब हाल सुनाया । सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—यह हाल तुम किसी से मत कहना और भविष्य में हमें सावधानी से रहना चाहिये ।

इस प्रकार कौरव और पाण्डव भीष्म की देख-रेख मे कृपाचार्य के पास रहकर अस्त्र-शस्त्र और अनेक विद्याओं को सीखने लगे । कुछ दिन बाद प्रसिद्ध धनुर्वेदज्ञ महात्मा द्रोणाचार्य जी हस्तिना-पुर आये और कृपाचार्य की बहिन से विवाह करके वहीं रहने

लगे। एक दिन पाण्डव लोग बाहर मैदान में गुल्लिडण्डा खेल रहे थे। अचानक गुल्ली एक कुएँ में गिर गई—कुआँ सूखा था। वे बड़ी तत्परता से आकर गुल्ली निकालने की चेष्टा करने लगे—पर निकाल न सके। इतने में द्रोणाचार्य उधर से आ निकले और बोले—कि तुम मुझे भोजन दो, तो मैं तुम्हारी गुल्ली निकाल सकता हूँ। युधिष्ठिर ने कहा कि गुरु कृपाचार्य की सम्मति से आप हमेशा भोजन प्राप्त कर सकते हैं। यह सुन द्रोणाचार्य ने मुस्कुरा कर सींकें धनुष पर चढ़ाकर एक के बाद एक सींक को बींधकर गुल्ली निकाल दी। बालक पाण्डव यह चमत्कार देख बहुत खुश हुए और आकर भीष्म जी से सब हाल कहा। भीष्म जी ने आकर द्रोणाचार्य से मुलाकात की और उनकी योग्यता देख, उन्हीं को सब कुरुवंशी बालकों को सौंप दिया। अब द्रोणाचार्य की देख-रेख में कौरव और पाण्डव विविध शस्त्रास्त्रों का अभ्यास करने लगे। एक दिन द्रोणाचार्य ने सबको बुलाकर कहा—मेरे मन में एक इच्छा है उसे तुम में कौन पूरी कर सकता है। यह सुनकर और सब तो चुप रहे पर अर्जुन ने उत्साह से उनकी इच्छा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की। द्रोणाचार्य उसी दिन से अर्जुन पर प्रसन्न रहने लगे।

अब उन्होंने अनेक दिव्य-अस्त्रों की शिक्षा उन्हें दी। और देखते-देखते सब राजकुमार महावीर बन गये। वृष्णि वंश के और अंधक वंश के राजकुमार भी द्रोण के पास शस्त्र शिक्षा लेने को

आने लगे। उधर सूत पुत्र कर्ण भी अर्जुन से लाग-डाट रखने को वहीं डट गये। इस प्रकार गुरुद्रोण का अखाड़ा खूब चमका। परन्तु अर्जुन सब बातों मे बढ़ते ही गये। और गुरुजी ने समझ लिया कि युद्ध विद्या के गूढ रहस्यों को अर्जुन ही समझ सकता है। बस वे मौका पाकर एकान्त मे अर्जुन को गूढ रहस्य बताने लगे। अर्जुन की तत्परता देख द्रोणने रसोइए से एकान्त मे कहा—तुम कभी अर्जुन को अंधेरे में भोजन मत देना और इसके लिये मैंने तुम्हे रोक दिया है यह अर्जुन से कहना भी नहीं। परन्तु दैव-योग से एक दिन अर्जुन जब भोजन कर रहे थे कि हवा के झोंके से दिया बुझ गया। पर अर्जुन बराबर भोजन करते ही रहे। उन्हे तुरन्त ध्यान आया, यह अभ्यास ही का कारण है कि अँधेरे में भी भोजन का हाथ सीधे मुँह मे जाता है, आंख-नाक मे नहीं। इसी तरह अंधेरे मे बाण का निशाना भी लगाया जा सकता है। बस वे अंध लक्ष्य का निशाना लगाने लगे। और शीघ्र ही उन्हे अंधेरे में लक्ष्य वेध करने का भी पूरा-पूरा अभ्यास हो गया। जब द्रोण ने रात मे धनुष की टंकार सुनी तो वे उठ कर अर्जुन के पास आए और उसका हस्त लाघव देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा—मैं तुम्हे ऐसी विद्या दूँगा कि इस पृथ्वी पर तुम से बढ़ कर कोई धनुर्धर न होगा।

इस प्रकार द्रोणाचार्य ने सब पाण्डवों को हाथी, घोड़े, रथ और पृथ्वी पर गदा युद्ध तलवार चलाना, तोमर शक्ति आदि

चलाना सिखा दिया। सब बातें सिखाने में वे अर्जुन को बार-म्बार बताते थे। जब सब कुमार सब प्रकार की विद्याओं में निपुण हो गये तो आचार्य ने उनकी परीक्षा करने की ठानी। सब शिष्यों में कुछ-न-कुछ खास योग्यता थी। अश्वत्थामा अस्त्र विद्या की गुप्त बातों के पूरे जानकार थे। नकुल और सहदेव तलवार चलाने में सानी नहीं रखते थे। रथ के युद्ध में युधिष्ठिर सबसे बढ़कर थे, पर अर्जुन सभी बातों में बढ़-चढ़ कर थे। अर्जुन में रचना, बुद्धि, एकाग्रता, बल और उत्साह थे। सभी बातें थीं। सब अस्त्र उन्हें मालूम थे। गुरु सेवा भी वे खूब करते थे। इन सब कारणों से वे अतिरथी कहलाने लगे। भीमसेन बल में अधिक था। इन सब बातों को देख कौरव उनसे खार खाने लगे।

गुरुजी ने एक नकली गिद्ध बनाया और उसे एक पेड़ पर बैठा दिया। उसकी आँख को निशाना नियत किया गया। सब कुमारों को बुलाकर कहा—इस निशाने पर बाण विद्धवगे। सब से पहिले युधिष्ठिर को बुलाकर कहा—निशाना मारो! जब वे निशाना साधने खड़े हुए तो गुरुजी ने पूछा—तुम उस गिद्ध को देख रहे हो?

युधिष्ठिर ने कहा—जी हाँ देख रहा हूँ। तब गुरु जी ने पूछा—क्या मुझे और वृक्ष को भी देख रहे हो?

उन्होंने कहा—जी हाँ, मैं सब को देख रहा हूँ।

इस पर गुरुजी ने नाराज होकर कहा—तुम लक्ष्य भेद नहीं कर सकते। धनुष को नीचे रख दो।

इसी प्रकार बारी-बारी से सभी राजकुमारों से प्रश्न किया गया, और सबका यही जवाब सुनकर धनुष रखवा दिया गया। यही हाल कौरवों का भी हुआ। अन्त मे अर्जुन को बुला कर कहा—अब तुम निशाना साधो। जब अर्जुन निशाना साध कर तैयार हुए तो गुरु जी ने कहा—कि तुम्हें गिद्ध दीखता है ? अर्जुन ने कहा—जी नहीं, मुझे तो सिर्फ उस की आँख ही दीखती है।

इस पर प्रसन्न होकर गुरु जी ने कहा—तुम निशाना मारो।

तब अर्जुनने गिद्धकी आँखमें निशाना मार दिया। गुरुजी ने खुश होकर कहा—अर्जुन तुम्हीं मेरी इच्छा को पूर्ण करोगे।

एक दिन गुरु जी गंगा में नहा रहे थे कि एक ग्राह ने आकर उनकी टांग पकड़ली। उन्होंने चिल्लाकर राजकुमारों से कहा—बचाओ-बचाओ। इस पर सब कोई घबरा गये। सिर्फ अर्जुनने बाण मार कर ग्राह का मुंह भर दिया। तब द्रोणाचार्यने प्रसन्न हो अर्जुन को ब्रह्मास्त्र दिया और कहा कि खबरदार इसे मनुष्य पर मत चलाना। अर्जुन वह अस्त्र प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सब कुमार खूब समर्थ और जानकार हो गए तब गुरुजी ने महाराज धृतराष्ट्र से कहा—कुमार सब प्रकार की शस्त्र विद्या मे पारगत हो गये है। आप इनकी परीक्षा ले लीजिये। बस राजाकी आज्ञा से सब कुमारोंकी परीक्षा की तैयारी की गई। बहुत सुन्दर रगभूमि बनवाकर उसमे सब नगर निवासी और पुरवासी देखने को बुला ए गए, राजपरिवार भी देखनेको आया। चारों तरफ भारी

भीड़ जमा होगई। बाजे बजने लगे और जब सब लोग यथास्थान बैठ गये तब राजकुमारों ने गुरुजी की आज्ञा से अपने-अपने कर्तव्य दिखाने शुरू कर दिये। लोग आश्चर्य से कुमारों का हस्त लाघव देखने लगे। धनुषबाण, तलवार, गदा, परिघ, शूल, भाला आदि भांति भांति के हथियारों से युद्ध के करतब दिखाए गए। अन्त में भीम और दुर्योधन गदा लेकर अखाड़े में आये। दोनों परम तेजस्वी और निपुण थे, दोनों की लड़ाई देखकर लोग उत्साह से वाह वाह करने लगे। विदुर धृतराष्ट्र को और कुन्ती गान्धारी को सभी बातें बताने लगी। दोनों वीर लड़ते लड़ते क्रोध से भर गये। तब गुरुजी के इशारे से अश्वत्थामा ने आकर दोनों का निवारण किया।

जब सब कुमार अपना अपना कर्तव्य दिखा चुके तो गुरुजी ने बीच रंगभूमि में खड़े हो उच्च स्वर से कहा, अब आप लोग अर्जुन को देखिए, जो इन्द्र और विष्णु के समान सब अस्त्रों के ज्ञाता हैं।

तब अर्जुन धीरे धीरे धनुष बाण लिये सजधज से, गोह के चमड़े का दस्ताना पहिने मञ्च पर आये तो दर्शक गण प्रसन्नता से वाह-वाह कहने लगे। चारों ओर बाजे बज उठे। लोग भांति भांति की बातें करने लगे। जब कोलाहल कुछ शान्त हुआ तो अर्जुन अपनी शस्त्र विद्या दिखाने लगे। पहिले उन्होंने आग्नेय अस्त्र से आग लगा दी, फिर वारुणीय अस्त्र से उस आग को बुझा दिया। वायव्य अस्त्र से हवा चलाकर पर्जन्यास्त्र से बादल बना दिये अन्तर्धान अस्त्र चलाकर वे छिप गये, फिर वे बहुत लम्बे, कभी

मोटे कभी पास और कभी दूर दीखने लगे। अब उन्होंने भरा घडा मुर्गी का अण्डा आदि निशानों पर ऐसे हल्के हाथ से पैने बाण मारे कि वे हिले भी नहीं। फिर घुघची आदि सूक्ष्म निशानों को उडाया, फिर लोहे पिण्ड आदि भारी निशानों को उडाया फिर घूमते हुये लोहे के सुअर के मुँह मे पाँच बाण मारे। इसी से लटकते सीग पर इक्कीस बाण मारे। इसके बाद खड्ग युद्ध, रथ-युद्ध धनुयु द्ध, गदा-युद्धके पैयरे और हाथ दिखाने लगे।

इसके बाद यह उत्सव खत्म होने ही पर था कि रङ्गभूमि के द्वार पर कोलाहल सुनाई दिया। अर्जुन की तारीफ सुनकर कौरव लडने को तैयार होगये। उनकी प्रेरणा से महाबली कर्ण खम ठोक कर रङ्गभूमि मे भारी-भारी सास लेते हुए आ खड़े हुये। उनके हाथ में धनुष और कमर मे तलवार लटक रही थी। क्रोध से उनकी आँखे लाल हो रही थी, और दाँत फडक रहे थे। उन्होंने मेघ की भाँति गर्ज कर कहा—हे अर्जुन तुमने जो कुछ कर्तब दिखाये है उन सब को तथा उनसे भी वढकर और अद्भुत कर्तब मै दिखा सकता हूँ, तुम ज्यादा घमण्ड में मत रहना। यह कहकर उसने वे सब काम करके दिखा दिये। यह देख दुर्योधन ने उसे गले से लगा कर कहा—तुम आज से हमारे मित्र हुए।

कर्ण ने कहा—अच्छी बात है, पर अभी तो मेरी इच्छा अर्जुन से दो दो हाथ करने की है। अर्जुन में दम हो तो आगे आवे।

यह सुनकर अर्जुन क्रोध मे फुफकार कर बोले—कर्ण! जो

चँवर होने लगा। कर्ण ने गद्-गद् कण्ठ से कहा—राजन्, आपने मुझे राजा बनाया है इसके बदले मे आप मुझसे क्या चाहते है आप जो कहे वही आपके लिये करने को तैयार हूँ।

दुर्योधन ने कहा—मै सिर्फ तुम्हारे साथ दोस्ती चाहता हूँ। यह सुन कर वे दोनों आपस मे गले लग कर मिले। यह हो ही रहा था कि सारथी अधिरथ लाठी टेकता, काँपता रंगभूमि मे आ पहुँचा, उसका शरीर पसीने से तर था और घबराहट के मारे उस के कंधे का कपड़ा खसका पडता था, वह पुत्र, पुत्र कह कर सिंहासन पर बैठे कर्ण की ओर लपका। कर्ण पिता को देखते ही धनुष धरती पर रख, स्वर्ण सिंहासन छोड पिता के चरणों में आ गिरे। अधिरथ ने अपने आँसुओं से कर्ण के अभिषिक्त सिर को फिर से अभिषिक्त कर दिया। भीमसेन ने चिल्लाकर हँसी उडाते हुए—अरे, यह तो इस सारथी का बेटा है। फिर कर्ण को लक्ष्य करके बोला—अरे, सूत पुत्र! तुम तो युद्ध मे अर्जुन के हाथ से मरने के योग्य भी नहीं हो। घोडों की रास पकडना तुम्हारा काम है। जाओ, अपना काम देखो।

तब क्रोध मे भर कर दुर्योधन ने भीमसेन को कहा—तुम क्यों इतनी शेखी बघारते हो, अरे शूरवीरों और नदियों के जन्म का वृत्तान्त कौन जानता है। तुम ही अपने जन्म की बात देखलो। यह सिर्फ अंगदेश के नहीं पृथ्वी के राज्य करने योग्य है। तुम में सामर्थ्य हो तो रथ पर चढ कर युद्ध कर लो।

दुर्योधन की यह बात सुनते ही सब कोई दुर्योधन की तारीफ करने लगे। इतने ही में सूर्य अस्त हो गये। तब कर्ण का हाथ पकड़ कर दुर्योधन रङ्ग भूमि से चल दिये, मशाल हाथ में लेकर सेवक गण आगे-आगे चले। द्रोण और पाण्डव भी अपने-अपने स्थानों को लौट गये। कुन्ती अपने पुत्र को अंगदेश का राजा होते देख अत्यन्त प्रसन्न हुई। दुर्योधन के मन में जो अर्जुन से भय था, वह कर्ण को पाने से निकल गया। युधिष्ठिर को निश्चय हो गया कि कर्ण के समान धनुर्धर पृथ्वी पर कोई नहीं है।

अब द्रोण ने सब राजकुमारों से कहा—तुम लोग गुरु दक्षिणा में मेरा एक काम करो। राजा द्रुपद ने मेरा अपमान किया था, उसे बांधकर मेरे सामने लाओ। सब कौरव और पाण्डव पांचाल देश पर चढ़ गये, भयङ्कर युद्ध हुआ। द्रुपद बड़ा वीर था। कौरवों ने वहां गांवों लूटने के लिये सबसे पहिले धावा बोला, द्रुपद ने उन्हें मार भगाया। अब पाण्डव कमर कस कर तैयार हुए, तब अर्जुन ने उन्हें रोककर कहा—आप लोग ठहरें, मैं अभी द्रुपद को पकड़े लाता हूँ। बस अर्जुन युद्ध के लिये चले, नकुल और सहदेव उनके पहियों की हिफाजत करते साथ-साथ चले। महावीर भीमसेन आगे-आगे चले, इस प्रकार पाण्डव पांचालों की सेना में विकराल पराक्रम से घुस गये, और देखते-देखते पांचाल सेना को परास्त कर द्रुपद और उसके पुत्र को बांध लाये।

द्रुपद को गुरु के सामने बांध लाकर अर्जुन ने गुरु दक्षिणा दी,

द्रोण ने द्रुपद को अपने अपमानकी याद दिलाई और उसका आधा राज्य उसे फेर दिया। इस विजय से अर्जुन का यश दिगन्त में व्याप्त हो गया। पाण्डवों के इस उत्कर्ष को देखकर धृतराष्ट्र को बड़ी फिक्र हुई और वह सोचने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि पाण्डव मेरे पुत्रोका राज-पाट छीन ले। इसी बीच मे पाण्डवोंने प्रतापी सौवीर नरेशको हराया। यवन राज को हराकर वश मे किया। तथा दक्षिण देशको जीत कर कौरवों के राज्य मे मिला दिया। इसके बाद राजा धृतराष्ट्र ने कणिक मन्त्री से कूट नीति को पूछ कर पाण्डवों को नष्ट करने की ठान ली। उधर दुर्योधन और उसके मित्र पाण्डवों को मार डालने की सोचने लगे।

सबने मिलकर सलाह की कि कुन्ती सहित पाण्डवों को आग मे जलाकर मार डालना चाहिये। धृतराष्ट्र ने भी इशारों से इस बात को पसन्द किया। पर विदुर जी पर यह भेद खुल गया। वे पाण्डवो को कही भगा देने की युक्ति सोचने लगे। सोच-विचार कर कौरवों ने पाण्डवो को वारणावत जाने की सलाह दी। कहा कि वहां बड़ा भारी मेला लगता है जाकर अपना मनोरंजन करो। राजा का इशारा पाकर पाण्डवो को वारणावत जाना पडा। दुर्योधन ने वहां पुरोचन को भेजकर पहिले ही एक लाखका भवन बनवा दिया था। विदुर ने फार्सी भाषा मे पाण्डवों को कौरवों की सब बाते समझा दी थीं इससे वे सावधान हो गये। वारणावत जाकर वे लाख के मकान मे ठहरे—और सलाह कर भीतर-ही-भीतर एक

सुरङ्ग खोद डाली जो जंगल में निकलती थी। एक दिन वे मौका पाकर मकान में आग लगा—सुरङ्ग के रास्ते जंगल में निकल भागे, पुरोचन उसी मकान में जल मरा। एक स्त्री अपने ५ बेटों सहित उस रात उस घर में सोई थी—वह भी वहीं जल मरी। सब ने समझा कि बेचारे पाण्डव माता सहित जल मरे। जब यह खबर हस्तिनापुर पहुँची तो दिखाने को कौरव खूब रोने-पीटने लगे। पर मन में बहुत खुश हुए।

उधर पाण्डव, सब भागते एक वन में निकल गए। और विदुर की व्यवस्था से उन्हें वहाँ एक नाव भी मिल गई, जिसके द्वारा वे सुरक्षित दूर पहुँच गये। वहाँ आकर उन्होंने भेष बदल लिया, तथा ब्राह्मणों और तपस्वियों की भाँति घूमते घामते आगे बढ़े। देश देशान्तर में वे घूमते फिरते एक चक्रानगरी में पहुँचे और एक ब्राह्मण के घर में डेरा डाला। इस नगर में एक राक्षस रोज एक आदमी का भक्षण करता था उसे भीमसेन ने महापराक्रम से मार डाला। फिर द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार सुन पांचाल देश को चल दिये। मार्ग में धौम्य ऋषि को पुरोहित बना साथ ले लिया। द्रुपद की राजधानी में आकर एक कुम्हार के घर डेरा डाला। और राज सभा में जा मत्स्य बेध करके द्रौपदी को ब्याहा—फिर अपना परिचय दे, द्रुपद के महल में जा आनन्दपूर्वक द्रौपदी के साथ रहने लगे।